प्रकाशक :

प्रकाशन-विभाग

गयाप्रसाद एण्ड संस,

बाँके विलास, सिटी स्टेशन रोड, आगरा



मुख्य विक्रय केन्द्र .

गयाप्रसाद एण्ड सन्स, हॉस्पीटल रोड, आगरा

ऑरियण्टल पब्लिशर्स, परेड, कानपुर

श्री अल्मोडा बुक डिपो, गांधी मार्ग, अलमोडा

पॉपूलर बुक डिपो, चौडा रास्ता, जयपुर

लॉयल बुकडिपो, पाटनकर बाजार, ग्वालियर

कैलाश पुस्तक सदन, हमीदिया रोड, भोपाल



पुस्तक का मूल्य :

१·२५ रु०



पुस्तक का संस्करण .

१९६१



मुद्रक .

जगदीशप्रसाद एम० ए०

एज्यूकेशनल प्रेस, आगरा

सूची

प्राक्कथन

नाटक का लक्षण—

नाटक नट् शब्द से बना है। नट् का अर्थ है—नृत्य और अभिनय। आचार्य भरतमुनि ने नाटक की व्याख्या करते हुए लिखा है कि नाटक का अभिप्राय है नृत्य, गीत, क्रिया और कविता। उन्होने साहित्य के विविध रूपो मे नाटक को श्रेष्ठ माना है।

हमारे देश मे नाटक के लगभग अट्ठाईस रूप माने गए हैं। उन रूपो मे कई नाटक ऐसे हैं, जिनमे एक ही अंक होता है। इस प्रकार सस्कृत-साहित्य मे एकाकी शताब्दियो से लिखे जा रहे है। किन्तु हिन्दी मे आधुनिक एकाकी बहुत पुराने नही है। जब हमारे देश मे अग्रेजी-शिक्षा का प्रभाव बहुत बढ गया और अग्रेजी की शैली पर छोटी कहानियाँ, कविताएँ लिखी जाने लगी तो कई नाट्यकारो ने अग्रेजी के ढग पर एकाकी लिखना प्रारम्भ किया। इसलिए हिन्दी-एकाकी को समझने के लिए संस्कृत-एकाकी की अपेक्षा अग्रेजी-एकाकी को समझना अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

अंग्रेजी मे एकांकी—

अग्रेजी मे एकाकी की रोचक कहानी है। जिन दिनो वहाँ बडे लम्बे-लम्बे नाटको का प्रचलन था और दर्शक रात्रि मे भोजन के उपरान्त नाटक-घरो मे रात-रात भर नाटक देखने के लिए

तैयार होकर आते थे, उन दिनो नाट्यशाला के प्रबन्धको को प्रबन्ध-सम्बन्धी एक बडी कठिनाई उठानी पडती थी। जो लोग रात को बडी देर मे भोजन करने के अभ्यासी थे, वे नाटक प्रारम्भ होने के उपरान्त आते। नाटक-घर के प्रबन्धक सबको सन्तुष्ट रखना चाहते थे। अतः जो लोग ठीक समय पर आ जाते थे उनको सन्तुष्ट करने के लिए कुछ ऐसे खेलो की व्यवस्था की गई जिनका मूल नाटक से कोई सम्बन्ध न हो। अतः दर्शको को प्रतीक्षा-काल मे जो अति साधारण कोटि का अभिनय दिखाया जाता था, उसे पटोत्तोलक (Curtain-raisers) कहते थे। ये ही छोटे-छोटे अभिनय आधुनिक एकांकी के पूर्वज हैं।

ज्यो-ज्यो दिन बीतते गये, त्यो-त्यो ये छोटे-छोटे पटोत्तोलक अधिकाधिक रोचक बनते गए। ये लघु नाटक इतने मनोरंजक होते गए कि बड़े नाटको की अपेक्षा इन लघु नाटको की ओर लोगो की रुचि बढती गई। अक्टूबर, सन् १९०३ ई० की बात है जब लुई एन० पार्कर्स ने डब्ल्यू० डब्ल्यू० जेकब्स की छोटी कहानी 'मंकीजपा' को पटोत्तोलक के रूप मे उपस्थित किया तो दर्शको मे अपार आनन्द छा गया। उस दिन भीड़ ने प्रसन्नता के वेग में मूल नाटक को देखने के लिए समय नष्ट करना उचित नही समझा। सारी भीड नाटक-घर को छोडकर चल पडी, इससे नाटक-घर के प्रबन्धको को बडी चिन्ता हुई और उन्होंने बडे नाटको की रक्षा के लिए कर्टेन-रेजर का बहिष्कार किया। इस घटना का दुहरा प्रभाव पडा। एक तो इन लघु नाटको की कला स्वतन्त्र रूप से विकसित होने लगी, दूसरे बड़े नाटको के आश्रय पर इनका जीवन निर्भर न रहा।

एकांकी का तंत्र—

यद्यपि एकांकी का लक्षण बताते हुए अनेक विद्वानो ने अनेक प्रकार से अपने मत प्रकट किए हैं, तथापि सब इस बात से एकमत हैं कि एकाकी मे एक घटना, एक परिस्थिति या एक समस्या की प्रधानता आवश्यक है। कथावस्तु, परिस्थिति, व्यक्तित्व इन सबके निदर्शन में

"मितव्ययिता और चातुरी का जो रूप अच्छे एकांकी नाटको मे मिलता है, वह साहित्यकला की अद्वितीय निधि है।"

* * *

"एकाकी नाटक मे एक से अधिक दृश्य हो सकते है पर यह नही हो सकता कि एक दृश्य आज की घटना का हो, दूसरा पन्द्रह दिनो के बाद की घटना का, तीसरा कुछ महीनो के पश्चात् का और चौथा कुछ वर्षों के अनन्तर का।"

एकाकी के तत्व—

(१) नाटक का केवल एक लक्ष्य हो।

(२) एक ही घटना, परिस्थिति अथवा समस्या की प्रधानता हो।

(३) नाटक के वेग मे पूरा प्रवाह हो, बिजली की तरह तीव्र गति हो।

(४) एक ही समय की घटना हो।

(५) एक ही कार्य पर ध्यान जमा हो।

(६) एकाकी मे जीवन का क्रमबद्ध विवेचन नही किया जाता बल्कि उसके किसी एक पहलू, उसकी एक महत्वपूर्ण घटना, उसकी एक विशेष परिस्थिति अथवा एक उद्दीप्त क्षण का चित्र मिलता है।

(७) एकता और एकाग्रता अनिवार्य है।

(८) उसके आरम्भ के लिए भूमिका बाँधने की आवश्यकता नही।

(९) प्रारम्भ आकस्मिक और अन्त आकस्मिक होता है।

(१०) कथावस्तु मे सरलता हो, जटिलता नही।

(११) प्रासगिक कथा, घटनाओ के घटाटोप, चरित्र के क्रमिक विकास और नाटक के विविध चढाव-उतार के लिए अवकाश नही होता।

चरम सीमा—

हम पहले कह आए है कि एकाकी का आरम्भ होने के उपरान्त

वह प्रायः दो मे से एक रूप धारण करता है । या तो उसमे विकास की प्रमुखता होती है या उद्‌घाटन की। विकास (Development) मे क्रमिक चढाव-उतार के आधार पर घटना या चरित्र चरम परिणति तक पहुँच जाता है और "अन्त मे जैसे एक गाठ-सी खुल जाती है।"

उद्‌घाटन (Exposition) मे विकास का क्रम नही दिखाई पड़ता। "उसमे तो घटनाओ अथवा भाव-विचारो की तहे खुलती चली जाती हैं और अन्त कही पर भी जाकर हो जाता है। पहला रूप जहाँ हमारी जिज्ञासा को उभारकर तुष्ट कर देता है, दूसरे मे परितोष का कोई निश्चित साधन नही होता। आपकी जिज्ञासा प्रायः बीच मे ही उलझी रह जाती है, और यही उसकी सफलता है। पहले मे वस्तुकौशल और दूसरे मे मनोविश्लेषण की शक्ति होती है।"

एकाकी और पूर्ण नाटक मे अन्तर—

एकाकी नाटको और पूर्ण नाटको मे महान् अन्तर दिखाई पडता है। इन दोनो की प्रकृति मे भिन्नता है। एकाकी बडे नाटक का सक्षिप्त रूप नही है।

(१) पूर्ण नाटको के प्रत्येक अक मे अन्त की ओर अग्रसर होने की वह तीव्रगति एव व्यग्रता नहीं होती जो एकाकी नाटको मे पाई जाती है।

(२) बडे नाटको मे मुख्य एवं प्रासगिक कथा-वस्तुएँ एक दूसरे से लिपटी हुई चलती हैं। किन्तु एकाकी मे एक ही कथावस्तु की प्रधानता रहती है।

(३) जीवन के विस्तृत भाग को समेटने की जब अभिलाषा रहती है तो पूर्ण नाटक की रचना होती है और जब उसके केवल एक भाग या एक भावना के चित्रण का लक्ष्य होता है तो एकाकी की रचना होती है।

(४) एकाकी मे केवल एक ही घटना रहती है और वह घटना नाटकीय कौशल से ही कौतूहल का सचय करते हुए चरमसीमा तक पहुँचती है। उसमे अप्रधान प्रसंग नही रहता।

(५) एकाकी नाटक का एक-एक वाक्य, एक-एक शब्द प्राण की भाँति आवश्यक है। वडे नाटको मे काट-छाँट के लिये अवकाश रहता है, किन्तु एकाकी मे एक शब्द को भी निकाल देना सम्भव नही।

(६) वडे नाटको मे पात्रो की सख्या अनेक हो सकती है किन्तु एकाकी मे पात्र-सख्या अत्यन्त परिमित होती है।

(७) पूर्ण नाटक मे चरित्र-चित्रण मे विविधता पाई जाती है किन्तु एकाकी मे पात्र के चरित्र के अग विशेप पर पूरा प्रकाश डालना होता है।

(८) पूर्ण नाटको मे कौतूहल उत्पन्न करने की स्थिति अनिश्चित रहती है। नाट्यकार सुविधानुसार किसी भी स्थान पर कौतूहलवर्द्धक दृश्य उपस्थित कर सकता है किन्तु एक.की मे प्रारम्भ से ही कौतूहल उत्पन्न करना आवश्यक हो जाता है।

(९) पूर्ण नाटको मे वर्णनात्मक शैली का किसी प्रकार निर्वाह पाया जा सकता है किन्तु एकाकी मे वर्णन सुनने का अवकाश कहा! एकाकीकार को व्यजनात्मक शैली का सहारा लेना पडता है।

(१०) सक्षेप मे कहा जा सकता है कि जो प्रभाव घटो तक वैठने पर दर्शक के मन पर पूर्ण नाटक डालता है, वही प्रभाव एकाकी तीस-चालीस मिनट के अन्दर उत्पन्न कर देता है।

नाटक मे सघर्ष और द्वन्द्व—

जीवन मे हमे अन्तर्द्वन्द्व और बाह्यद्वन्द्व दोनो दिखाई देते है। जव हमारे मन की दो विरोधी भावनाएँ आपस मे टकराती हैं तो अन्तर्द्वन्द्व की सृष्टि होती है और जव दो विरोधी परिस्थितियाँ एक-दूसरे से होड लेना चाहती है तो बाह्यद्वन्द्व उत्पन्न होता है। इन दोनो प्रकार के सघर्षों का प्रभाव एक-दूसरे पर अनिवार्य रूप मे पडता है। भारतीय नाटको मे इन दोनो प्रकार के सघर्षों से उत्पन्न स्थितियो का समझौता कराकर नाटक का अन्त सुखमय दिखाया जाता है, किन्तु यूरोपीय नाटको मे व्यक्तिगत

भावो की विशेपता दिखाने के लिये इनसे टक्कर लेते-लेते जीवन का अन्त कर दिया जाता है और नाटक को ट्रेजेडी के रूप मे बदल दिया जाता है ।

हिन्दी-नाटको मे आज जो ट्रेजेडी के तत्व मिलते हैं, वे प्रायः पश्चिमीय नाटको के द्वारा हिन्दी मे आये है ।

यद्यपि हिन्दी-एकाकी अग्रेजी, सस्कृत और जन-नाटक के आधार पर विकसित होते रहे है तथापि मेधावी नाट्यकारो ने अपनी प्रतिभा के वल से इनमे नये-नये प्रयोग भी किये हैं । यदि रेडियो से प्रसारित होने वाले हिन्दी-एकाकी के विविध रूपो पर ध्यान दिया जाय तो इसके निम्न-लिखित प्रकार मिलते हैं—

(१) रेडियो-रूपक (२) फीचर (३) ध्वनिनाट्य (४) स्वोक्ति (५) फैन्टेमी (भावनाट्य) (६) गीत-रूपक (७) रिपोर्त्ताज (८) जन नाटक (९) व्यग्य ।

आज सवसे अधिक एकाकी नाटक रेडियो से प्रसारित हो रहे हैं । उत्सवो के अवसर पर स्कूलो, और विविध सस्थाओ मे भी इनका अभि-नय होता है ।

हिन्दी मे एकाकी नाटको का विकास उत्तरोत्तर होता जा रहा है । इन नाटको का वर्गीकरण भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से किया जा सकता है । आज के प्रमुख एकाकी अभिनय की दृष्टि से सफल दिखाई पड रहे हैं । यह इनकी वडी विशेपता है । आज के एकाकी नाटको पर भरत-मुनि का नाट्य-लक्षण पूर्ण रीति से घटित हो रहा है ।

मृदुललितपदाढ्यं गूढशब्दार्थहीन,
जनपदसुखवोध्यं युक्तिमन्नृत्ययोज्यम् ।
वहुकृतरसमार्गं सन्धिसन्धानयुक्त,
भवति जगति योग्यं नाटकं प्रेक्षकाणाम् ॥

अर्थात् नाटक मे मृदु ललित पद ऐसे हो जिनमे गूढार्थ न हो। वे सामान्य जनता के समझने योग्य हो, उनमे नृत्य की योजना हो, नाना प्रकार के रस हो, वे सन्धियो से युक्त हो और दर्शको का मनोरजन करने वाले हो।

वर्तमान युग—

वर्तमान युग के प्रमुख एकाकीकारो मे उल्लेखनीय सर्वश्री रामकुमार वर्मा, उदयशकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', जगदीशचन्द्र माथुर, लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास, गिरजाकुमार माथुर, हरिकृष्ण प्रेमी, वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, सत्येन्द्र शरत्, लक्ष्मीनारायण लाल, धर्मवीर भारती, विष्णुप्रभाकर, सुदर्शन प्रभृति है। नवीन एकाकी की कला के विकास और प्रयोग मे इन एकाकीकारो का महत्वपूर्ण योग है। इन्होने पात्रो के चरित्र-चित्रण मे विशेष दिलचस्पी दिखाई है तथा मनोवैज्ञानिक अतर्दृष्टि से चरित्रो का विश्लेषण किया है।

इस युग मे एकाकीकार अपनी भापा यथासभव सरल, स्वाभाविक तथा दैनिक जीवन मे प्रयुक्त होने वाली हिन्दी रखते है। इस युग मे राजनीति की प्रधानता होने के कारण एकाकियो मे राजनीतिक घटनाओ, आन्दोलनो, विविध राजनीतिक दलो के प्रतिनिधित्व करने वाले विचार तथा दृष्टिकोणो का विस्तृत विवेचन हुआ है। इस प्रकार के राजनीतिक एकांकीकारो मे प्रमुख है—विनोद रस्तोगी, रागेयराघव, प्रकाशचन्द्र गुप्त, अमृतराय, प्रभाकर माचवे, विमला लूथरा और सत्येन्द्र शरत्। महात्मा गाधी की विचारधारा से एकाकी-साहित्य भी अछूता नही रह सका है। जिन एकाकीकारो ने महात्मा गाधी की नीति, योजनाओ, विचारधाराओ आदि का प्रतिपादन किया है उनमे से प्रमुख है—विष्णुप्रभाकर, हरिकृष्ण 'प्रेमी', रामचन्द्र तिवारी आदि। ऐतिहासिक क्षत्र मे डा० रामकुमार वर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा, उदयशकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण लाल, रामवृक्ष वेनीपुरी आदि उल्लेखनीय है।

हिन्दी मे आज एकाकी नाटक की लोकप्रियता वढती जा रही है।

साहित्य के अन्य माध्यमो—कविता, उपन्यास, कहानी, निबध, नाटक, जीवनी, समालोचना, सस्मरण, यात्रा-विवरणो आदि मे एकाकी भी एक शक्तिशाली स्थान ग्रहण करता जा रहा है। अनेक गभीर समस्याप्रधान एकाकी लिखे जा रहे है।

आधुनिक एकांकी-कला की मुख्य विशेपताए—

आज हिन्दी-एकाकी की टेकनीक वहुत कुछ निश्चित हो चुकी है। आज के एकाकी आकार मे लम्बे, शिथिल-कथोपकथनयुक्त, अनेक पात्रो और दृश्यो से परिपूर्ण, लम्बे वर्णनो से युक्त और गीतो से भरे नही होते। एकाकी की कला को निखारने का प्रयत्न वर्तमान एकाकीकारो द्वारा यत्नपूर्वक किया जा रहा है। आधुनिक एकाकीकार यथासभव प्राय: केवल तीन पात्रो को प्रविष्ट करता है। पुराने एकाकियो मे पात्रो की सख्या वढते-वढते वारह-तेरह तक पहुँच जाती थी। कुछ पात्र केवल दो-चार स्थानो पर ही वोलते थे और अनावश्यक रूप से रगमच पर भीड-भाड उपस्थित कर देते थे। इससे चरित्र-चित्रण यथोचित रुप मे नही हो पाता था। अव यथासभव कम पात्र रखे जाते हैं। ये मुख्य रुप मे प्रमुख पात्र, पात्री तथा खलनायक होते है। कभी दो पुरुप, एक स्त्री, कभी दो स्त्रिया एक पुरुप रखा जाता है। कुछ एकाकीकार ऐसे एकाकियो की रचना कर रहे हैं जिनमे स्त्री-पात्र हैं ही नही। इसके विपरीत कुछ ऐसे हैं जिनमे स्त्री ही स्त्री पात्र है, पुरुप पात्र एक भी नही है।

हमारे कॉलेजो तथा विश्वविद्यालयो के युवको मे नाटक के प्रति विशेप चाव और उत्साह है। पाठ्यक्रमो मे एकाकियो का अध्ययन विशेप महत्व रखता है। इससे विद्यार्थियो मे नव-स्फूर्ति एव जागृति आती है। जो विद्यार्थी स्वय अभिनेता वनना चाहते हैं अथवा सार्वजनिक जीवन मे व्याख्यान देना सीखना चाहते हैं, उनके लिये एकाकी का रगमंच वहुत सहायक सिद्ध होगा।

आज हिन्दी एकाकी का भविष्य उज्ज्वल है।

यह सकलन—

प्रस्तुत सकलन विकासोन्मुख हिन्दी एकाकी-साहित्य का प्रतिनिधि सकलन कहा जा सकता है। इसमे जो एकाकी सकलित किए गए हैं सभी उद्देश्यपूर्ण हैं और विद्यार्थियो के ज्ञान मे वृद्धि करते हुए उन्हे उचित और उच्चकोटि की प्रेरणा देगे। हिन्दी मे एकाकी लिखने वालो की सख्या यद्यपि अब काफी हो गई है—फिर भी ऐसे लेखक थोडे है, जिन्होने सफल एकाकी नाटक लिखे है। उन सफल एकाकीकारो को ही इस सकलन मे स्थान दिया गया है—सर्वश्री सुदर्शन, हरिकृष्ण 'प्रेमी', रामकुमार वर्मा, उदयशकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', जगदीशचन्द्र माथुर तथा विष्णुप्रभाकर। इनमे से प्रत्येक एकाकी-लेखक की अपनी विशेपता है।

इस सकलन को इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण कहा जा सकता है कि इसमे सकलित प्रत्येक एकाकी एक गतिमान ध्येय लेकर लिखा गया है। इनमे से प्रत्येक मे जीवन की एक छोटी सी घटना का रूपदर्शन होता है जो पात्र या पात्रो द्वारा अभिव्यक्त होती हुई पराकाष्ठा पर पहुँचती है। प्रत्येक एकाकी के प्रारम्भ मे उसके लेखक ने आवश्यक सामग्री प्रस्तुत करके चरित्र-चित्रण को सवाद, चेष्टा, भावभगी के सहारे दिखलाया है और बीच अथवा अन्त मे एक ऐसी अवस्था आकर उपस्थित की है जहाँ घटना तीव्र वेग से गतिमान होने लगती है और एक धक्के की तरह या तो रुक जाती है जिसे देखकर दर्शक अभिभूत हो उठता है या फिर वह और आगे चलती है और परिणाम दिखाकर समाप्त हो जाती है। प्रत्येक कुशल एकाकी-लेखक की इस सम्बन्ध मे अपनी टेकनीक होती है। इसलिये प्रायः यह कहना कठिन होता है कि 'क्लाइमेक्स' कहाँ आना चाहिये। कुछ एकाकियो मे 'क्लाइमेक्स' प्रायः आखिर मे आता है, कुछ का अत के कुछ पहले। कही-कही एकाकीकार बिना 'क्लाइमेक्स' के भी एकाकी लिखते हैं, उसमे निरन्तर तारतम्य रहता है, इसलिये एकाकी

शिथिल नही हो पाता फिर भी साधारणतया एकाकी मे तीव्र प्रभाव का होना आवश्यक है।

इस संग्रह मे सकलित सभी एकाकियो मे क्षिप्र गति के साथ सवाद की अनुरूपता तथा यथार्थ का प्रतिपादन मिलेगा। मीठे शब्दो मे मतलब की बात ही एक एकाकी का मूल बीज होता है। जो एकाकी जितना ही गतिमान होगा वह उतना ही रोचक एव आकर्षक होगा, इस तथ्य का पूरा-पूरा ध्यान इस सकलन मे रखा गया है। केवल गति ही नही इन एकाकियो मे गति को बनाए रखने के लिये सवाद, घटना, वस्तु, पात्रों का एकीकरण पर भी लेखको ने पूरा ध्यान रखा है।

शिक्षण की दृष्टि से इस सग्रह की उपयोगिता—सकलन के प्रथम एकाकी श्री सुदर्शन कृत 'राजपूत की हार' मे मध्यकालीन भारत के समाज के स्वाभिमान और मातृ-प्रेम का आदर्श चित्रण है। श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' द्वारा लिखित दूसरे एकाकी 'पश्चात्ताप' मे हरिजनो पर होने वाले अत्याचारो की करुण कहानी है। इसमे पुरातन रूढिवादिता और नवीन प्रगति का सघर्ष है। ऊँच-नीच की घातक प्रवृत्ति का मूलोच्छेदन करके सामाजिक समता की प्रस्थापना इसमे की गई है। तीसरा एकाकी 'रेशमी टाई' लेखक श्री रामकुमार वर्मा, मानव की एक प्रधान कमजोरी—दूसरे की भूल से लाभ उठाने की नीयत—को आधार बना कर लिखा गया एक सफल एकाकी है। इसका नायक नवीन अपनी पत्नी लीला के दृढ चरित्र से प्रभावित होकर अपनी खोटी नीयत बदल डालने का सकल्प कर लेता है। और इस प्रकार पाठक के मन पर भी चरित्रवान होने के महत्व की अमिट छाप छोड देता है। इस सकलन का चौथा एकाकी है 'दस हजार' जिनके लेखक हैं श्री उदयशकर भट्ट। इस एकाकी मे एक कंजूस बनिये के मन मे होने वाले पुत्र-प्रेम और धन-प्रेम का द्वन्द्व बडे ही मनोरजक रूप मे दिखाया गया है। पाचवें एकाकी 'तौलिए' के लेखक श्री 'अश्क' ने अपने इस एकाकी मे आधुनिक शिष्टाचार की कृत्रिमता को दर्शाया है, जिसके रहते मधुर

खुलकर हँस नही सकती, बोल नही सकती, यहाँ तक कि अपने पति वसंत के जीवन मे भी उसने अपने इस व्यवहार से घुटन पैदा करदी है। इस एकाकी से यह स्पष्ट हो जाता है कि पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण हमारे लिए उपयुक्त नही। यह हमारी नैसर्गिक प्रवृत्तियो पर आघात कर जीवन को विषम बना दे रहा है। श्री जगदीशचन्द्र माथुर का एकाकी 'रीढ की हड्डी' इस सकलन का छठा एकाकी है जो एक सफल और सबल 'व्यग्य' है। कन्याओ की सामाजिक स्थिति का इससे अनुमान किया जा सकता है। जिसमे समाज की उस घृणित मनोवृत्ति का चित्रण किया गया है, जो कुमारी युवती को मेज-कुर्सी के समान बेजान और निरीह समझती है। सातवाँ एकाकी है—माता-पिता। लेखक है श्री विष्णु प्रभाकर। इसमे उन्होने सतान के प्रति मा-बाप के अतिशय प्यार और लोकोपकारी पुत्र का सफल चित्र खीचा है। माता-पिता अपने प्यार और ममता से संतान को स्वार्थ के घेरे से न बाँध कर त्यागी, धीर और मनुष्यता का पुजारी बनाएँ और यदि मनुष्यता की सेवा करते-करते वह अपने प्राण भी दे दे तो उसके लिए पश्चात्ताप न कर गौरव का अनुभव करे। यही आदर्श इस नाटक मे रखा गया है।

उपर्युक्त उद्देश्यो की पृष्ठभूमि पर लिखे गए ये एकाकी, आशा है, शिक्षण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगे।

—ईश्वरचन्द्र

पहला दृश्य

स्थान : जोधपुर के किले का एक कमरा

समय : दिन के दस बजे

[महामाया और कुलीना बातें कर रही हैं।]

महामाया : नही माँ ! नही, मेरा दिल अभी तक अशान्त है। मैं कुछ नही कर सकती।

कुलीना : आठ दिन बीत गए है, परन्तु तेरा मन अभी तक अशान्त है। यह तेरा पागलपन है।

महामाया : ठीक है, मैं ही पागल हूँ। (ठण्डी साँस लेकर) वह तुम्हारा बेटा है। तुम उसकी माँ हो। तुम उससे क्या कह सकती हो ! और मैं पराये घर की बेटी हूँ। मैं ही पागल हूँ।

कुलीना : (प्यार से)—मेरी बेटी ! जो कुछ भी हो, वह तेरा पति है।

महामाया : मगर वह कायर है। उसने शत्रु को पीठ दिखाई है। वह प्राण बचाने के लिए रण-क्षेत्र से भागा है। माँ ! जरा सोचो, लोग अपने-अपने घर में हमारे बारे मे क्या कहते होंगे ! मेरी सखियाँ, जो मेरा भाग्य

सराहती थीं, आज मेरे दुर्भाग्य पर शोक कर रही होगी।

कुलीना : महामाया ! मेरी बच्ची !

महामाया : (भर्राए हुए स्वर मे) अगर वह राजपूत था, अगर उसने वीर माता का दूध पिया था, अगर वह राजपूत सिहनी की गोद मे पलकर युवा हुआ था, तो उसे चाहिए था कि रण-भूमि मे डट जाता, मृत्यु के भय को पाँव-तले मसल डालता और ससार को दिखा देता कि राजपूत का बच्चा मृत्यु और जीवन दोनो को समान समझता है। माँ ! मैं समझती थी, मेरा पति सूरमा है। मेरा खयाल था, वह आदर के जीवन और आदर की मृत्यु दोनों की व्यवस्था जानता है, मगर (दीर्घ नि.श्वास लेकर) हाय शोक ! यह मेरी भूल था—वह हारकर भी, अपनी और दूसरो की दृष्टि मे अपमानित होकर भी, जीवित रहना चाहता है !

कुलीना मेरी बच्ची ! जोश मे न आ। इससे कुछ प्राप्ति न होगी। आज्ञा दे कि किले के द्वार खोल दिये जाए। आठ दिन द्वार पर पडे रहना साधारण दण्ड नही है।

महामाया साधारण दण्ड नही है ! माँ, राजपूत के बेटे के लिए हारकर भाग आना ऐसा पाप है, जिसका कोई प्रायश्चित्त नही। यदि मेरी आँखें यह दुर्दिन देखने से पूर्व सदा के लिए बन्द हो जातीं, तो मै इसे अपना सौभाग्य समझती।

कुलीना : धीरज धर, मेरी बच्ची! धीरज धर। तेरी जीभ से ऐसे शब्द सुनकर मेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े हुआ जाता है।

महामाया : और अपने बेटे की वीर-घटना सुनकर तो तुम्हारी छाती हर्ष से फूल उठी होगी, क्यो ?

कुलीना : (आह भर कर) यह तू कहती है क्या ? मेरी बच्ची ! तू, जो मुझे भली भाँति जानती है। आज तू ही मुझे यह ताने दे रही है !

महामाया : (कुलीना के कन्धे पर सिर रखकर) माँ ! क्या तुझे मेरे दुर्भाग्य पर दया नही आती ? राजपूत माँ की कोख से जन्म लिया, राजपूत के वीर-परिवार मे व्याही गई, और फिर भी मुझे भीरु, कायर, जीवन का लोभी पति मिला ! जहाँ शूरवीर हर्ष से पागल हो उठता है, जहाँ सच्चे राजपूतो को आगे-पीछे का ध्यान नही रहता, उसने वहाँ भी अपने प्राणो को प्यारा समझा और भागकर घर मे आश्रय लेने आया है। माँ ! क्या सचमुच वह तेरा बेटा है ? नही, मालूम होता है, वह तेरा बेटा नही है। तूने किसी का पुत्र लेकर पाल लिया है। तू सच्ची राजपूतनी है। तेरे दूध मे यह निर्लज्जता नही हो सकती। वह तेरा बेटा नही है। वह तेरा बेटा नही हो सकता।

कुलीना : मेरी बच्ची ! चाँद और सूरज भी ग्रहण के समय काले हो जाते है।

महामाया : (चौंककर) माँ ! मुझे एक और खयाल आया है। (सोंचती है)

कुलीना : (अनमनी-सी) क्या ?

महामाया : (रुक-रुककर) शायद यह राणा न हो, कोई छलिया उनके रूप मे हमे धोखा देने आया हो। वे ऐसे कायर न थे। उनकी रगो मे न हारने वाली शक्ति, उनके लहू मे न बुझने वाली अग्नि, उनकी भुजाओ मे न झुकने वाली शक्ति थी। मैंने उनको निकट होकर देखा है, मैंने उनका दिल पढा है—वे सूरमा थे। उनको आन प्यारी थी, उनको जान प्यारी न थी।

कुलीना : (आँसू पोंछकर) मेरा भी यही खयाल था, मेरी बच्ची !

महामाया : एक दिन कहते थे, राजपूत की कसौटी मौत है। मैंने हँसकर पूछा, अगर आप किसी दिन युद्ध-क्षेत्र से हारकर भाग आएँ, तो मुझे क्या करना उचित है ? माँ ! जानती हो, उन्होने मेरे इस अपमान-सूचक प्रश्न का क्या उत्तर दिया ? अगर तुम समीप होती, तो अपने पुत्र को गले से लगा लेती। उन्होंने कहा—महामाया ! अगर कभी मेरे जीवन मे ऐसा अशुभ समय आ जाय, तो अपनी कटार मेरी छाती मे भोंक देना, यह मुझ पर सबसे बड़ा उपकार होगा।

कुलीना : उस समय वह सच्चे राजपूत के समान बोल रहा था।

महामाया : एक दिन कहते थे, युद्ध-क्षेत्र मे हार जाना लज्जा

को बात नही, लज्जा की बात यह है कि वीर पुरुष हारकर भी जीता रहे। जो वीरात्मा है, वह हार सकता है, हारकर जीता नही रह सकता। अपनी माँ, बहन और स्त्री के सामने सिर नही उठा सकता। उसके लिए 'पराजय' और 'मृत्यु' एक ही वस्तु के दो नाम हैं।

कुलीना : मेरा बेटा सचमुच बडा बहादुर था। न जाने आज उसे क्या हो गया ?

महामाया : (उन्मत्त भाव से) कुछ नही हुआ माँ ! वे आज भी उसी तरह बहादुर हैं। वे लडते-लडते वीर-गति को प्राप्त हो चुके है और यह नराधम, नरक का कीडा, जो हमारे द्वार पर पडा है, उनके कपड़े चुराकर और डाकुओ को लेकर हमे धोखा देने आया है।

कुलीना : (आकाश की ओर देखकर) काश, तुम्हारा खयाल ठीक होता !

महामाया : (आश्चर्य से) ठीक होता ! तो क्या तुम्हे अभी भी सदेह है ? क्या तुम भी उनको इतना पतित समझती हो ? नही माँ, नही। वे युद्ध मे मारे जा चुके है, मैं अब विधवा हो चुकी हूँ। नौकरों से कहिए, चिता चिन दें; मैं उनका नाम लेते-लेते सती हो जाऊँगी।

कुलीना : (महामाया को गले से लिपटाकर रोते हुए) मेरी बच्ची ! तुझे क्या हो गया है ?

महामाया : (सुनी-अनसुनी करके) वे स्वर्ग मे मेरी बाट जोह रहे होंगे। झुक-झुककर नीचे की तरफ देखते होंगे। मेरे बिना घबरा रहे होगे। आज्ञा दो माँ ! (हाथ जोड़कर

वे क्षात्र-धर्म का पालन कर चुके, अब मेरे नारी-धर्म-पालन करने की बारी है। (ऊँची आवाज़ से) मालती ! वीरा !! शक्ति !!!

[तीनो सहेलियो का सिर झुकाए हुए प्रवेश]

महामाया : (विना उनकी तरफ देखे धीरे-धीरे) चन्दन की लकड़ियाँ मँगवाकर चिता चिन दो ˙ ˙ मेरे सारे बढ़िया कपड़े और अनमोल आभूषण ले आओ !...... मैं उनसे मिलने जा रही हूँ। मैं आज आग के उड़न-खटोले पर सवार होऊँगी।

[सहेलियाँ पहले घबरा जाती है, फिर एक दूसरी की तरफ देखती है और इसके बाद कुलीना की तरफ देखती है।]

कुलीना : पागल हो गई है !

महामाया : (चौंककर) कौन पागल है ? (फिर स्वय ही उत्तर देती है) वही, जो मेरे पति के भेस मे मुझे ठगने के लिए आया है (कुछ देर चुप रहने के बाद) सचमुच वह पागल है, जो समझता है कि मै भेस और शक्ल-सूरत से धोखा खा जाऊँगी, यह उसकी भूल है। मैंने पहचान लिया, यह कोई और आदमी है, यह महाराणा जी नही है। (झूमते हुए) यह महाराणा जी नहीं है, किसी से पूछ लो !

कुलीना : मेरी बेटी ! मेरी प्यारी बच्ची !

महामाया : (कटार निकालकर) अच्छा, पहले चलकर उसे उसी की कसौटी पर परख लूँ। मालती! वीरा!! शक्ति!!! जाओ, जाकर दुर्ग-रक्षक से कहो, दरवाजा खोल दे, मैं

यह कटार उनकी छाती में भोंक दूँगी। अगर राणा जी होंगे, मेरे कर्तव्य-पालन की प्रशंसा करेंगे। अगर कोई लम्पट होगा, कटार देखकर चिल्लाता हुआ भाग जायगा। मालती! वीरा!! ललित!!!

ललित : महारानी जी! क्या आज्ञा है?

महामाया : तिलक तैयार हुई या नहीं? राजपुरोहित आया या नहीं? मेरे आभूषण कहाँ हैं? तुम चिल्लाकर क्यों नहीं रही हो। राणा जी अब तो आते होंगे।

ललित : (सुशीला से) राजमाता! आपने देखा, इनको क्या हो गया?

सुशीला : इन दो पखवाड़े राजप्रासाद में ये चर्चा और वैद्यराज से कहो, अभी उपचार औषधि दें। मैं अभी आती हूँ।

[सहेलियों का महामाया को सहारा देकर ले जाना और अमरसिंह का प्रवेश।]

सुशीला : अमरसिंह! कोई नवीन समाचार है?

अमरसिंह : राजा चार पहर शिकार खेलते रहे और मर गए। महाराणा के लौटने अभी तक नहीं आये।

सुशीला : महाराणा अब महामाया से क्या चाहता है?

अमरसिंह : अवश्य नहीं कहता हूँ। उनकी आगे उनका मोह है। पर रहें कहाँ तक और वे हैं; उनको कहीं सान और नहीं पहुँचे। अगर बताया तो, तो फिर का उपचार सोच लिया जाय। कहिए, क्या आप बाहर गईं थीं?

सुशीला : मैं क्या कर सकती हूँ! राजमाता नहीं जानती।

अचलसिंह : आप जो चाहे, कर सकती है। किले मे कौन है, जो आपकी आज्ञा न माने ।

कुलीना : महारानी महामाया है। मै कुछ नही कर सकती ।

अचलसिह आप राजमाता हैं, आप सब कुछ कर सकती है ।

कुलीना : राजमाता बीते हुए 'कल' की रानी है। आज की रानी महामाया है, उसके सम्मुख मै भी सिर नही उठा सकती ।

अचलसिह : मगर उन्होने तो कभी आपकी किसी बात का विरोध नही किया ।

कुलीना : यह उसकी कृपा है ।

अचलसिंह सामन्तो की सम्मति है कि आप उनको विवश करके दरवाजा खुलवा दे ।

कुलीना यह मेरी भूल होगी ।

अचलसिंह तो फिर क्या आज्ञा है ?

कुलीना : (सोचकर) महामाया को होश आ जाय, तो मै उससे पूछूंगी । इस समय तुम जाओ, दो-तीन घण्टे बाद आना ।

दूसरा दृश्य

स्थान: उसी किले का दूसरा दृश्य

समय: दोपहर

[महामाया एक पलग पर लेटी है, पास में सहेलियाँ—शक्ति, वीरा और मालती वैठी है। सिर की ओर दवा की शीशियाँ रखी हैं। महामाया चुपचाप छत की तरफ देख रही है। उसके कपोल पर आँसू वह रहे हैं। सहेलियाँ रूमाल से आँसू पोछ रही हैं।]

शक्ति : महारानी ! रोने से क्या होजायगा ? धीरज धरिए। यह साधारण बात है।

महामाया : (ठंडी आह भरकर) शक्ति! यह साधारण बात नही है। मुझसे मेरा गौरव छिन गया। मेरे हृदय मे उनके लिए जो श्रद्धा थी, वह जाती रही। मै अपनी दृष्टि मे आप ही गिर गई हूँ, यह साधारण बात तो नही।

शक्ति : मगर महारानी ! युद्ध मे हार-जीत दोनो की सम्भावना है। किसी न किसी को तो हारना ही पडेगा। दोनो नही जीत सकते।

महामाया : हार की सम्भावना है, मगर हार कर माँ की गोद मे भाग आने की सम्भावना नही है और वह भी एक राजपूत के लिए ! ओह शक्ति ! तुम नही जानती, मेरा रुधिर जल रहा है। जी चाहता है, किले की सब स्त्रियाँ चलें और दीवार पर से तीर बरसा-बरसाकर उन भगोड़ो का काम तमाम करदें। उनको पता लग जाय कि जब राजपूत युद्ध से हार-कर घर को लौटते है, तो उनकी स्त्रियाँ, उनकी बहिनें और उनकी माताएँ उनका स्वागत किस तरह करती है। जी चाहता है, हम उनको बता दें कि ऐ नामर्दो! तुमने अपना कर्त्तव्य भुला दिया है, मगर तुम्हारे घर की देवियो मे यह भाव अभी तक जीवित है। (जोश मे उठकर बैठ जाती हैं) जी चाहता है, हम उनको बता दें कि जो राजपूत युद्ध से हार कर घर की तरफ भागता है, उनके घर की स्त्रियाँ उनकी गर्दन काटने

के लिए, उसके घर के दरवाजे पर नगी तलवार लेकर खडी हो जाती है।

शक्ति : (लिटाते हुए) लेट जाइए ! आपके लिए यह जोश हानिकारक है।

महामाया : परन्तु उस कायर के लिए हानिकारक नही है। (थोडी देर के बाद) वीरा ! क्या दुर्गरक्षक ने दरवाजा खोल दिया ?

वीरा : आपकी आज्ञा का उल्लघन कौन कर सकता है ?

महामाया : यह मेरी आज्ञा न थी, माँ जी का आदेश था, वर्ना मै उनको दरवाजा कभी न खोलती। (एकाएक चिल्लाकर) वीरा ! शक्ति ! ! मालती ! ! ! उठो, दौड़कर जाओ। दुर्ग-रक्षक से कहो, दरवाजा न खोले, मैंने अपनी सम्मति बदल दी है।

मालती : दरवाजा खुल चुका, वे कभी के अन्दर आ चुके।

महामाया : अब भी जाओ, मेरा मुँह क्या देख रही हो ? (मिन्नत से) अब भी जाओ! और उन सब भगोडो को धक्के मार-मारकर किले से बाहर निकाल दो, वर्ना इस पवित्र दुर्ग की पावन-भूमि अपवित्र हो जाएगी।

[एकाएक कुलीना का प्रवेश]

कुलीना : नही, मेरी बहादुर बच्ची ! तेरे किले के अन्दर आकर उनकी सोई हुई आत्मा जाग उठेगी।

महामाया : माँ ! तूने कहा ? (उठकर सास के गले से लिपट जाती है।) फिर कहो, माँ ! फिर कहो, उनकी सोई हुई आत्मा जाग उठेगी। मै इस एक क्षण के लिये अपना सर्वस्व

लुटा देने के लिए तैयार हूँ। मै अपना राज दे सकती हूँ, मैं अपना जीवन दे सकती हूँ, मैं अपने जीवन को जीवन के उल्लास और प्रकाश से खाली कर सकती हूँ। किसी तरह उनकी आत्मा जाग उठे। वे फिर से वैसे ही वीर, वैसे ही निर्भय वन जाएँ। मै और कुछ नही चाहती।

कुलीना : तुम मुझ पर विश्वास करो, मै उसको सचेत कर दूंगी।

महामाया : मै आपके कहने पर मरने को तैयार हूँ।

कुलीना : (वात का रुख वदलकर) तुमने दवा पी या नही ?

महामाया : अभी नही।

कुलीना : मालती ! दवा दो, यह पगली आत्महत्या करने पर तुली हुई है।

[मालती दवा पिला देती है।]

अव जसवन्तसिंह आ रहा है, उनका अपमान न करना। थका हुआ है, घायल है, कई रातो का जागा हुआ है। हारकर आया है, क्रोध मे होगा। दरवाजे पर पडा रहा है, लज्जित होगा। तुम्हारे कटु वचनो से और भी विगड जायगा। तुम्हारी दो मीठी वातो से उसे सारे कष्ट भूल जाएँगे।

महामाया : (वेवसी से) माँ ! मुझे कत्ल कर दो, मगर यह न कहो। मुझसे यह न होगा। मेरे हृदय में घृणा की आग जल रही है।

कुलीना : आज सायकाल से पहले-पहले वह भी लडने को

चला जायगा (महामाया के सिर पर स्नेह से हाथ फेरकर) वह स्वभाव से योद्धा है, इस क्षणिक जीवन में प्रेम का भाव ज्यादा देर तक स्थिर नही रह सकता ।

महामाया : (आशापूर्ण स्वर से) आज सायकाल से पहले-पहले फिर लडने को चले जाएँगे ! यह कौन कहता है ?

कुलीना : मैं ।

महामाया आप इन शब्दो का अर्थ समझती हैं ?

कुलीना : मैंने आज तक कभी झूठ नही बोला ।

महामाया : (हाथ बाँधकर) मेरा अपराध क्षमा हो, मेरा तात्पर्य यह कभी न था ।

कुलीना : चलो लडकियो! यह कमरा खाली कर दो । (सहेलियो का चला जाना) ले मेरी बच्ची ! वह आ रहा है, उससे अच्छी तरह पेश आना, और कहना—रसोईघर मे चलिए, मेरी श्रद्धा है, अपने हाथ से हलवा बनाऊँ और आपको अपने सामने बिठाकर खिलाऊँ ।

महामाया : मै हलवा बनाकर खिलाऊँगी ! नही, यह मुझसे न होगा, माँ !

कुलीना : यह उसके मानसिक रोग की अमोघ औषधि है ।

महामाया : (आश्चर्य से)—हलवा !

कुलीना : यह हलवा उसके गले के नीचे न उतरेगा । वह इसे केवल एक बार देखेगा और घोडे पर चढकर किले से बाहर निकल जायगा । मै उस भूले हुए शेर के बच्चे को शीशे के सामने ले जाकर उसे उसका मुँह दिखा देना चाहती हूँ ।

महामाया : फिर इस हलवे का क्या होगा ?

कुलीना : पुत्र के पुनरुत्थान के उपलक्ष्य मे किले की स्त्रियो मे बाँटा जायगा ।

[कुलीना हँसकर चली जाती है]

महामाया : भगवन् ! उनकी आँखे खोल दे, नही मेरा जीवन मेरे लिए असह्य हो जायगा ।

[महाराणा जसवन्तसिंह धीरे-धीरे प्रवेश करते हैं। उनके सिर और भुजाओ पर पट्टियाँ वँधी हैं, मुँह का रंग पीला है, आँखो में लज्जा है। पति और पत्नी एक दूसरे की ओर देखते हैं और चुप रहते हैं । इसके बाद राणा पलग पर वैठ जाते है, महामाया पास आ जाती हैं।]

जसवन्तसिह : (धरती की ओर देखते हुए) महामाया ! यह पराजय जन्म भर न भूलूंगा ।

महामाया : (तीखी दृष्टि से देखकर) खैर, यह साधारण बात है। प्राण बच गये, वही बड़ी वात है ! प्राण-रक्षा राजपूत का सर्वप्रथम धर्म है ।

जसवन्तसिह : मैंने अपनी तरफ से पूरा-पूरा यत्न किया, परन्तु मेरी कोई पेश न गई ।

महामाया : सत्य है, असहाय मनुष्य और कर भी क्या सकता है ?

जसवन्तसिंह : (महामाया की वात को न समझकर जरा साहस से) मनुष्य प्रारब्ध के हाथ का खिलौना है , वह उसे जिधर चाहता है, उठाकर फेक देता है ।

महामाया : मनुष्य की इससे अच्छी परिभाषा मैंने आज तक

नही सुनी । कहिए जख्मो का क्या हाल है ?

जसवन्तसिंह : इससे तुम्हे क्या ? तुमने अपनी तरफ से मेरा अपमान करने मे कोई कोर-कसर नही उठा रखी ।

महामाया : आपने भूल की, आपको आगे न बढना चाहिए था। लडने के लिए सेना होती है, सेनापति को पीछे रहना चाहिए । उसका सकट मे पडना उसकी मूर्खता है ।

जसवन्तसिंह : (क्रोध से) मालूम होता है, तुम मेरी हँसी उड़ा रहो हो ।

महामाया : राम-राम ! मुझमे यह साहस कहाँ कि आप जैसे विश्वविजयी की हँसी उडा सकूँ ?

जसवन्तसिंह : तुम्हे मालूम होना चाहिए कि मै तुम्हारा पति हूँ और जोधपुर का महाराणा हूँ ।

महामाया : (तिलमिलाकर) आपको भी मालूम होना चाहिए कि मै वीर पिता की बेटी हूँ और मुझे निर्लज्जतापूर्ण जोवन से घृणा है ।

जसवन्तसिंह : तो क्या तुम चाहती हो कि मै वहाँ मर जाता?

महामाया : यह मेरे और मेरे कुल के लिए गौरव को बात होती ।

जसवन्तसिंह : मुझे यह पता नही था कि तुम्हे विजय इतनी प्यारी है ।

महामाया : मुझे विजय नही, आन प्यारी है । आन के सामने सारे ससार को तुच्छ समझती हूँ ।

जसवन्तसिंह : घर म बैठी बाते करती हो, एक बार युद्ध मे चली जाओ, तो होश ठिकाने आ जाएँ।

महामाया : पहले पुरुष चूडियाँ पहन ले, फिर स्त्रियाँ घर मे रह जाएँ, तो नाक कटा दूँ।

[कुलीना का हँसते हुए प्रवेश]

कुलीना : (महामाया को आँख से इशारा करके) क्यो बेटी ! आते ही वाग्युद्ध प्रारम्भ कर दिया ! तुम बडी मूर्खा हो उठो, रसोईघर मे चलकर अपने हाथ से हलवा बनाओ। मेरा बेटा समर से जीता लौटा है। आज मै अत्यन्त प्रसन्न हूँ।

जसवन्तसिंह : माँ ! तुमने सुना, यह स्त्री अभी-अभी क्या कह रही थी ? जी चाहता है·· ·····

कुलीन : बेटा ! शान्त हो। यह तो गँवार है। तू चलकर रसोई में बैठ।

जसवन्तसिंह : नही माँ, मै इसके साथ वहाँ कभी न जाऊँगा। उफ् ! कितनी हृदयहीन है, कहती है ········

महामाया · (तडपकर)—क्या कहती हूँ ?·· ·····

कुलीना : (बात काटकर)—चुप बहू ! मै आज के दिन तुम्हारा यह झगडा नही देख सकती। उठो, चलकर रसोई मे बैठो, मगर सावधान ! कोई लडाई-झगडे की बात न करे। आज खुशी का दिन है।

तीसरा दृश्य

स्थान : उसी महल का रसोईघर

समय : दोपहर

[महामाया हलवा बना रही है। महाराणा किसी गहरी चिन्ता मे निमग्न सामने बैठे हैं। महामाया उनकी तरफ देखती है, और उसकी आँखो से चिनगारियाँ निकलने लगती है। साफ मालूम होता है कि उसके हृदय मे उथल-पुथल मच रही है।]

महाराणा : सिपाहियो की मरहम-पट्टी हो रही है क्या ?

महामाया : (रुखाई से) हो रही होगी। मैने आज्ञा दे रखी है।

महाराणा : (थोडी देर चुप रहने के बाद) देखता हूँ तुम्हारा क्रोध अभी तक नही उतरा।

महामाया : (भूने हुए आटे मे चीनी की चासनी डालते हुए) उतरे या न उतरे, इसकी आपको क्या परवाह है ?

महाराणा : तुम्हारे क्रोध की मुझे परवाह नही, तो और किसे है ? मैने अपनी अनुपस्थिति मे किले का सारा भार तुम्हारे सुपुर्द कर दिया था। तुमने आदेश दिया, हम द्वार पर रोक दिए गए। यह मेरा घोर अपमान था, मगर मैने तुमसे एक शब्द भी नही कहा, क्योकि मै तुम्हारी नेकनीयती स्वीकार करता हूँ। तुम फिर भी कहती हो, मुझे तुम्हारी परवाह नही ! (हँसकर) चलो अब जाने दो। जो हो गया, सो हो गया। और यह कोई ऐसी बात नही, जिसके लिए.........

महामाया : (कढाई मे कलछी चलाती हुई) आपके लिए यह बुरा दिन है।

महाराणा : (तेज होकर)—तो आखिर तुम क्या चाहती थी ? मैं मर जाता, तो तुम खुश हो जाती ?

महामाया : कायरो के लिए मरना बडा कठिन है। वह मौत को देखकर दूर ही से भाग निकलते है।

[चूल्हे में लकडी डालती है।]

महाराणा : महामाया ! तुम्हारा एक-एक शब्द विप मे बुझा हुआ तीर है।

महामाया . युद्ध से भागकर आए हुए लोगो को मीठे वचन सुनने का कोई अधिकार नही।

[फिर हलवा बनाने में लीन हो जाती है]

महाराणा : महामाया ! महामाया ! !

महामाया : (कपडे से कढाई के दोनो सिरे पकडकर) मीठे वचन नही, तो क्या हुआ, मीठा हलवा तो है ! यह पराजय का पुरस्कार है, पेट भरकर खाइए। (कढाई नीचे उतारकर पति के मुँह की तरफ देखती है) एक दिन वह था, जब इज्जत की बाजी हारकर राजपूत किसी को मुँह न दिखा सकता था। आज समय कितना बदल चुका है। माता प्रसन्न होती है, स्त्री हलवा बनाती है और भागा हुआ पति रसोई मे बैठकर मीठी-मीठी बाते सुनना चाहता है ! उसे यह बात भूल गई है कि युद्ध के अवसर पर विलासिता की बातें करना देश और जाति के लिए महान् पाप है।



[कलछी लेने के लिए इधर-उधर देखती हैं।]

महाराणा . मैं चाहता हूँ, तुम पुरुष होती ।

महामाया · मैं चाहती हूँ, आप स्त्री होते ।

[कढाई मे जोर-जोर से कलछी चलाती है, इसकी आवाज सुनकर कुलीना घबराई हुई प्रवेश करती है ।]

कुलीना : महामाया ! यह किस वस्तु की आवाज है—यह तुम क्या कर रही हो ?

महामाया : (आश्चर्य से) कढाई मे कलछी चला रही हूँ, माँजी!

कुलीना . अरी बेटी ! कलछी बाहर निकाल, नही अन्धेर हो जाएगा ।

महामाया : (और भी चकित होकर) माँजी ! इससे क्या अन्धेर हो जाएगा, मैं कुछ भी नही समझी ।

[महामाया थाल मे हलवा डाल देती है]

कुलीना . काहे को समझेगी ? जैसे तुम अभी दूध-पीती बच्ची हो, जैसे कुछ जानती ही नही । क्या तुम्हे मालूम नहीं कि लोहे से लोहा बजते देखकर मेरा बेटा मेरी गोद में छिपने के लिए यहाँ भागकर आया है ? क्या तुम उसे यहाँ से भी भगाना चाहती हो ? बेटी ! अब वह कहाँ जायगा, यहाँ से भागकर उसे आश्रय पाने को स्थान कहाँ मिलेगा—परमेश्वर के लिए यह लोहे की कलछी बाहर फेक दो । कही ऐसा न हो, वह फिर लोहे की कढाही से टकरा जाय, और मेरा बेटा डर-कर यहाँ से भी भाग निकले; फिर मैं क्या करूँगी ।

[महामाया का मुँह चमकने लगता है, वह अपनी खुशी छिपाती है और हलवा से थाल भरकर पति के सामने रख देती है। महाराणा कुछ देर चुप रहते हैं, इसके बाद थाल को परे सरका देते है और जोश से तनकर खडे हो जाते हैं।]

महाराणा बस कर, माँ! बस कर! तूने मेरी आँखे खोल दी है, तूने मुझे जगा दिया है, तूने मुझे अँधेरे से निकालकर ज्योति और जीवन के पथ पर डाल दिया है। कितनी लज्जा और शोक की बात है कि राजपूत का बच्चा पराजित होकर भाग आये! भगवान जाने, मुझे क्या हो गया था। मुझे वही कटकर मर जाना चाहिए था। परन्तु—

[महामाया पति की तरफ श्रद्धापूर्ण प्रेम से देखती है।]

तुम्हारा कहा सुना व्यर्थ नही गया। मै अपनी कायरता के लिए तुमसे क्षमा माँगता हूँ।

कुलीना . बेटा! तू अब फिर वही निर्भय, युद्धवीर, साहसी जसवन्तसिह है, जिसने मेरा दूध पिया था, जिसने मेरे कुल का नाम उज्ज्वल करने का व्रत लिया था, जिसके मुँह की ओर देखकर मेरी मुरझाई हुई आशाएँ हरी हो जाती है। महामाया! खुश हो, तेरा स्वामी अपनी पराजय के काले दाग को मिटाने के लिए खडा हो गया है।

महामाया : यह सब आप ही की कृपा है।

महाराणा . माँ! मुझे तुम पर भी गर्व है और इस पर भी गर्व

है। तुम दोनो ने मिलकर मेरी आँखे खोल दी है। हमारी आने वाली सन्तान यह सुनकर खुशी से पागल हो जाएगी कि उनका एक पूर्वज पराजित होकर घर आया, तो उसको पत्नी ने उसे घर के अन्दर आने की आज्ञा न दी। राष्ट्रीय गौरव और अभिमान का ऐसा उज्ज्वल, ऐसा ओजमय दृष्टान्त मानव-जाति के इतिहास मे किसी ने कम ही पढा होगा। इससे भारतवर्ष को अपना सिर ऊँचा उठाने का अवसर मिलेगा, यह मेरा परम सौभाग्य है कि मुझे ऐसी धर्मपरायणा स्त्री मिली, जिसको मेरी मर्यादा मेरे प्राणो से भी प्यारी है।

महामाया : (सिर झुकाकर धीरे से) माँ ! इनसे कहो, मेरा अपराध क्षमा कर दे।

महाराणा : तेरा अपराध हमारे कुल का सबसे बडा गौरव है। (माँ की तरफ देखकर) मगर माँ ! मै राजपूत हूँ और राजपूत इतना आत्मगौरव-हीन कभी नही होता। मुझे बता, मेरी इस कायरता का मूल कारण क्या है ?

कुलीना : यह तेरा नही, मेरा दोष है। (दोनो चौंक पडते हैं। कुलीना धीरे-धीरे कहती है, जैसे कोई भूली-हुई घटना याद कर रही है।) यह उन दिनो की बात है, जब तेरी आयु केवल दो वर्ष की थी। एक दिन मै भोजन बना रही थी और तेरे पिताजी इसी रसोईघर मे इसी स्थान पर बैठे भोजन कर रहे थे। एकाएक तू रोकर दूध के लिए मचलने लगा। मैने सोचा, मेरी देह गर्म है,

अगर तूने दूध पिया, तो वीमार हो जायगा, इसलिए मैंने दासी से कहा—इसे वाहर ले जाकर चुप करा, मगर तू वरावर रोता रहा।

[महामाया पति की ओर कनखियो से देखती है और मुस्कराती है।]

महाराणा : फिर ?

कुलीना : दासी ने तुझे चुप कराने के लिए अपना दूध पिला दिया। आध घन्टे वाद मुझे यह वात मालूम हुई, तो मैंने तेरे गले मे उँगली डालकर कै करा दी, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि दूध की वही एक-दो बूंदे आज इस पतन के रूप मे प्रकट हुई है। यह तेरा दोष नही उसी दूध का प्रभाव है।

महाराणा : अस्तु, जो कुछ भी हो, इस कायरता के कलक को मै अपने लहू से भी धोने के लिए तैयार हूँ, अब तुमको यह शिकायत न रहेगी। कोई है ? मेरी तलवार और कवच लाओ, और सेना से कहो, तेयार हो जाय।

कुलीना : देवता वह दिन दिखाएँ, जब मेरा वेटा विजय-पताका उड़ाता हुआ घर आए।

[कुलीना चली जाती है। महामाया धीरे-धीरे आकर महाराणा के पास खड़ी हो जाती है। फिर सिर उठाकर उनकी तरफ देखती है और मुस्कराती है]

महामाया : आपने मेरा अपराध क्षमा किया ?

महाराणा : तुम्हारा अपराध मेरे जीवन की सबसे बड़ी सम्पत्ति है।

महामाया : अब आप मुझसे रुष्ट तो नही है ?

महाराणा : तुमसे रुष्ट होने का यह अर्थ है कि मुझसा मूर्ख इस राज्य में कोई नही है। तू स्त्री नहीं है, देवो है। मेरी दृष्टि मे तू इतनी पवित्र, इतनी उज्ज्वल कभी न थी। (थोडी देर के वाद) देवी, अव आज्ञा दो, सेना तैयार होगी।

महामाया : इतनी जल्दी ! क्या आप कल नही जा सकते ? एक दिन विश्राम कर लीजिए।

[महाराणा की तरफ प्यार से देखती है और अपना सिर उसके कन्धे पर रख देती है]

महाराणा : (मुस्कराकर) युद्ध के अवसर पर विलासिता की बाते करना देश और जाति के लिए महान् पाप है।

महामाया : (चौंक उठती है) अच्छा, हलवा तो खा लीजिए, (लाकर) आपकी प्यारी महामाया ने आपके लिए अपने हाथो से बनाया है।

महाराणा : (फिर महामाया के शव्द दोहराते हैं) क्या यह पराजय का पुरस्कार है ? (मुस्कराकर) मै कैसा भाग्यवान् हूँ कि हारकर भी ऐसी मीठी चीजे मिल रही है। महामाया ! तूने मेरी आँखे खोल दी है, तूने मुझे सीधा मार्ग दिखा दिया है, तूने मुझे भूला हुआ कर्त्तव्य स्मरण करा दिया है। अव वही तू मेरे सामने अपना असीम प्रेम और हृदयग्राही मुस्कान लेकर क्यो खडी हो गई है ? यदि अव मुझमे फिर निर्वलता आ गई, तो यह मेरा नही तेरा दोष होगा (ठहरकर) तो मेरे हृदय की रानी ! अव आज्ञा है ? जाऊँ ?

महामाया : हाँ, प्राणनाथ ! जाइए और विजय के डंके बजाते हुए आइए। वहाँ समर-स्थान मे मेरा प्रेम आपकी रक्षा करेगा।

[महाराणा का तेजी से चले जाना।]

महामाया : (उदास होकर) चले गये—मैंने उनको ताने दे-देकर फिर भेज दिया। (आकाश की तरफ देखकर) प्रभो ! उनकी रक्षा करो। जिस तरह खुश-खुश गए है, उसी तरह खुश-खुश वापस आएँ।

[कुलीना का प्रवेश]

कुलीना : वीर-वधू ! तू अब यहाँ खडी क्या सोच रही है ? पगली ! उदास हो गई ? नही, तुझे यह उदासी, यह हृदय की निर्बलता नही सुहाती। तू सबला है, तेरा पति सच्चा वीर है। चल, उठ, यह हलवा सिपाहियो के घरों मे बाँट आएँ। इसके बाद सेना को विदा करना है।

[पर्दा गिरता है।]

प्रश्न

१. माँ के दूध की महत्ता को इस एकाकी मे किस प्रकार व्यक्त किया गया है ?
२. कुलीना के चरित्र की विशेषताएँ लिखिए। महामाया के चरित्र से उसकी तुलना कर।
३. महाराणा जसवन्तसिंह माँ कुलीना की किस बात से अत्यधिक प्रभावित हुए ?



श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'

पश्चात्ताप

पात्र

कन्हैया—अछूतोद्धार मे लगा हुआ एक कुलीन युवक

पचकौड़ीदास—एक ब्राह्मण वैद्य

डाक्टर—एक ईसाई डाक्टर जो पहले भगी था

रामदुलारी—वैद्यजी की पत्नी

रधिया—एक अछूत कन्या

रधिया की माँ, वैद्य जी के साथी,

कन्हैया से पढने वाले अछूत विद्यार्थी

नाटककार का परिचय

जीवन-परिचय

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' ग्वालियर के निवासी हैं किन्तु उनकी साहित्य-साधना का क्षेत्र अधिकतर लाहौर (पंजाब) हो रहा है। विभाजन के कारण आपको पजाब छोड़ना पड़ा था। आजकल आप आकाशवाणी, इन्दौर मे हैं।

आप एक सफल नाटककार के अतिरिक्त सुकवि भी हैं। आपके नाटकों पर राष्ट्रीय आन्दोलन का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। फलस्वरूप आपने राष्ट्र-प्रेम, हिन्दू-मुस्लिम एकता, हरिजन आन्दोलन आदि पर पर्याप्त और सुन्दर ढंग से लिखा है। कवि होने के नाते आपके नाटको मे भावुकता, सरसता और काव्य-सुलभ शब्दावली का प्रयोग होता है। आपके नाटको की अभिनेयता असदिग्ध है।

आपकी भाषा सरल, ओजपूर्ण तथा चित्रण सजीव और शैली मार्मिक होती है।

प्रस्तुत एकाकी

प्रस्तुत एकाकी 'पश्चात्ताप' मे हरिजनो पर होने वाले अत्याचारो की करुण कहानी है। इसमे पुरातन रूढ़िवादिता और नवीन प्रगति का संघर्ष है। ऊँच-नीच की घातक प्रवृत्ति का मूलोच्छेदन करके सामाजिक समता की प्रस्थापना इसमे की गई हे।

कृतियाँ

कीर्ति-स्तम्भ, विषपान, स्वप्नभंग, रक्षाबन्धन, प्रकाश-स्तम्भ, शिवा-साधना, शपथ, उद्धार, छाया, प्रतिशोध, आहुति, बन्धन—नाटक।

अनन्त के पथ पर, अग्निगान, रूप-दर्शन, वन्दना के बोल और आँखों मे—कविता-संग्रह।

पहला दृश्य

[एक गाँव के छोटे-से मन्दिर की सीढियाँ। मदिर के अन्दर घन्टे, झालर और शख आदि के वजने की आवाज हो रही है। आरती भी गाई जा रही है—लेकिन दूसरी आवाजो मे मिलकर वह साफ नही सुनाई देती। एक १२-१३ वर्ष की लडकी मन्दिर की सबसे निचली सीढी पर वैठी हुई ध्यान लगाकर मदिर मे से आने वाली आवाज़ो को सुन रही है। लडकी सुन्दर भी है, भोली भी है और साफ-सुथरी भी। कपडे वडे साधारण है, कही-कही फटे भी है, लेकिन मैले नही है। चेहरे पर समझदारी की झलक है— ऐसा जान पडता है जैसे वह कुछ पढती-लिखती भी है। लडकी का नाम है रधिया। रधिया कुछ सोच मे डूबी-सी वैठी है कि उसी गांव मे अभी-अभी आया हुआ नवयुवक कन्हैया आता है। उसके हाथ मे कुछ फूल है। रधिया का ध्यान उसकी तरफ नही जाता। लडका ठीक उसके पीछे खडा होकर उसके सिर पर कुछ फूल फेक देता है। रधिया चौंककर पास मे पडे एक पत्थर को उठाती है और खडी होकर उस फूल फेंकने वाले को मारना चाहती है कि कन्हैया को देखकर शरमा जाती है।]

कन्हैया : फूल के वदले पत्थर देती हो, रधिया !

रधिया : देवता पर चढाए जाने वाले फूल तुमने मुझ पर क्यो फेके ?

कन्हैया : इसलिए कि तुम देवी हो। मनुष्य ही तो सच्चा देवता होता है, रधिया! जो मनुष्य की पूजा नहीं करता, वह भगवान की पूजा कैसे कर सकता है ?

रधिया : मनुष्य की पूजा करने से देवता नाराज होते हैं।

कन्हैया : सो क्यो ?

रधिया : मेरे हिस्से की मिठाई यदि तुम खा जाओ, तो क्या मुझे क्रोध न आएगा ?

कन्हैया : तुम्हारी मा का हिस्सा भी तुम्हे दे दिया जाय, तो तुम्हारी मा प्रसन्न होगी ना ? मनुष्य भी तो भगवान की सतान है—जो उसकी सतान की पूजा करता है, उससे भगवान् प्रसन्न होते हैं। अब जाऊँ, भगवान की आरती मे भी शामिल हो लूँ।

[कन्हैया जाता है और रधिया की मा आती है। उसके हाथ मे डलिया और झाड़ू है।]

रधिया की मा : अरी रधिया, तू यहाँ क्या कर रही है ? अभी तक झाड़ू ही नही लगाई सडक पर। अरी, पुजारी जी नाराज हो जाएँगे और भगवान् के भोग मे से हमे कुछ नही देगे।

रधिया : जरा भगवान की आरती सुनने लगी थी—फिर कन्हैया भैया आ गये, उनसे बाते करने लगी।

रधिया की मा : बेटी हमारे लिए तो लोगो की सेवा करना ही भगवान की पूजा है। चल झाड़ू लगा।

रधिया : नही मा, आज मैं भगवान् के दर्शन करूँगी।

रधिया की माँ : मै तुझे कितनी बार समझा चुकी हूँ कि

मंदिर के भीतर जाकर भगवान् के दर्शन करने की हमारी औकात नही है ।

रधिया : क्यो, क्या हम मनुष्य नही है ?

रधिया की मा : मनुष्य तो है लेकिन नीच जात है---ऊँच जात वालो की बराबरी हम कैसे कर सकते है ?

रधिया : लेकिन कन्हैयां दादा तो कहते है कि जो सेवा करते है, वे ऊँचे आदमी होते है---हम सब लोगो की सेवा करते है---जैसे मा बच्चे की सेवा करती है—फिर हम नीच कैसे हुए ? हम मदिर मे, भगवान के दर्शन के लिए क्यों नही जा सकते ?

रधिया की मा : हमारे मदिर मे जाने से मदिर अपवित्र हो जाता है, बेटी ! हम गदे काम जो करते है—गदे जो रहते है ।

[वैद्यराज पँचकौडीदास आते हैं और सीढियो पर चलते हुए मदिर मे जाते हैं । वे एक मली धोती का आधा भाग ही पहने हुए हैं और आधा कधे पर डाले हुए हैं । बदन उघडा है । एक मैला और मोटा जनेऊ पहने हुए हैं । उनके एक हाथ मे फूलो से भरा एक दोना है, दूसरे हाथ मे जल-भरा लोटा । पँचकौडीदास रधिया की मा और रधिया दोनो पर एक दृष्टि फेककर मन्दिर मे घुस जाते हैं]

रधिया : मा, हम ऐसे पडितो से तो अधिक स्वच्छ है । ये मदिर में जा सकते है, तो हम क्यो नही ?

रधिया की मा · बडी जात वाले गदे रहकर भी पवित्र गिने जाते है । बेटी, यह सब कर्मों का फल है । हमने बुरे

कर्म जो किए थे, इसीलिए भगी बने है—इन्होने अच्छे कार्य किए, इसीलिए ये बामन हुए।

रधिया झूठी बात। यह व्यवस्था इन्ही की बनाई हुई है। यह इनका अत्याचार है—और हमारी बे-समझी। जैसे मा सब बच्चो को बराबर प्यार करती है—वैसें ही भगवान भी। क्या हम भगवान की सतान नही है ? क्या हममे भक्ति-भाव नही ? क्या हम मनुष्य नही ?

रधिया की मा—है क्यो नही, लेकिन भगवान की आज्ञा भी तो हमे माननी होगी। पचो की आज्ञा ही भगवान की आज्ञा है। चलो बेटी, हम अपना काम करे।

रधिया . उँ—हूँ—मै तो आज मदिर मे जाऊँगी।

[एक सीढी चढती है कि ऊपर शोर सुनाई देता है। पँचकौडीदास कन्हैया को धक्के मारता हुआ बाहर ला रहा है]

पँचकौडी . तुम गाधी के चेलो ने धर्म-कर्म को नष्ट करने की ठान ली है। चाडाल! रोज भंगियो के मोहल्ले मे पढाने जाता है, अगर भगवान के मदिर की सीढी पर पैर रखा तो सिर फोड दूँगा। यह धर्म का मामला है, इसमे हम रियायत नही कर सकते।

[जोर से धक्का देते है। कन्हैया सीढियो पर से लुढक जाता है—उसके सिर मे चोट आती हे। रधिया और रधिया की मा उसे सँभालती है। रधिया अपनी चुन्नी फाडकर चोट पर पट्टी बांधती है।]

रधिया : भैया, तुम्हे हमारे कारण बहुत कष्ट मिला।

रधिया की मा . मैं तुमसे पहले ही कहती थी कि हमारे मोहल्ले मे मत आया करो। इसे ये ऊँची जात वाले

कभी सहन नही करेगे ।

कन्हैया · ये लोग अभी समझते नही—एक दिन समझ जाएंगे ।

रधिया हम लोग इनका काम छोड दे, तो एक दिन मे इनकी बुद्धि ठिकाने आ जाय ।

कन्हैया : नही रधिया, हम सेवा और प्रेम से ही इन नादानो को रास्ते पर लाएंगे, (उठकर खडा हो जाता है) अब मैं ठीक हूँ । तुम अपना काम करो ।

[कन्हैया चला जाता है । एक भगत मदिर से बाहर निकलता है । उसके हाथ मे एक दोना है, जिसमे कुछ प्रसाद है, जिसे वह खाता आ रहा है । सीढियो से नीचे आकर वह जूठन रधिया को देता है—लेकिन रधिया लेती नही, मुँह फेरकर खडी हो जाती है ।]

रधिया की मा . ले ले, बेटी ! भगवान का प्रसाद है ।

रधिया जूठन खाने से हैजा हो जाता है मा । आजकल हैजा फैल भी रहा है ।

रधिया की मा भगवान के प्रसाद का अपमान नही करते, बेटी ।

[दोना आप ले लेती है । भगतजी चले जाते है]

रधिया . (मा के हाथ से दोना छीनकर फेकते हुए) जो हमे नीच समझते है, उनकी जूठन खाने की हमे क्या जरूरत ? चलो मा, यहाँ से चलो ।

रधिया की मा . काम तो कर ले । (झाडू लगाने लगती है । रधिया रोष मे भरी चली जाती है ।)

[मदिर मे से भजन के गाने की ध्वनि आती है]

[नेपथ्य मे गान]

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो ।
समदरसी है नाम तिहारो, चाहो तो पार करो ।
इक लोहा पूजा मे राखत, इक घर बधिक परो ।
पारस गुन-अवगुन नहि चितवे, कचन करत खरो ।

[झाड़ू लगाते-लगाते रधिया की मा ओझल हो जाती है]

[पर्दा बदलता है]

दूसरा दृश्य

[वैद्यराज पँचकौडी एक बगिया मे गाँव के कुछ मित्रो के साथ बैठे हुए हैं। एक व्यक्ति सिल पर भाँग घोट रहा है। भाँग का सभी सामान मौजूद है।]

भॉग घोटनेवाला · वैद्यजी, आपकी वैद्यकी मे भॉग के भी गुण दिये होगे न ?

पँचकौडी : हॉ-हॉ, क्यो नही। हमारे आयुर्वेद मे हर एक फूल-पत्ती, फल-फूल के गुण-दोष दिये है। अरे भैया, जहॉ तक हमारी देसी चिकित्सा-विधि की पहुँच है, वहॉ तक तो अँग्रेजी डाक्टरी अभी हजार बरस नही पहुँच सकती।

एक साथी : लेकिन, आजकल तो सब लोग दौड-दौड़कर डाक्टरो के पास जाते है।

पँचकौडी · कुछ नही, यह पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव है। दो अक्षर अग्रेजी के पढ गए, तो अपने बड़े-बूढो को,

देसी वस्तुओ को, देसी रीति-रिवाजो को निकम्मा और हीन समझने लगे।

दूसरा साथी हाँ, पश्चिम की हर एक वस्तु आराध्य बन गई है। फैशन है—फैशन, वैद्यजी।

भाँग घोटनेवाला . लेकिन वैद्यजी, भाँग के गुण तो आपने बताए ही नही।

पँचकौड़ी भाँग क्या है! वास्तव मे यही तो आर्य-ऋषियो का सोम-रस था। एक प्याले मे स्वर्ग की सैर कर सकते हो। वैद्यक के अनुसार देखो तो कब्ज को यह दूर करे, बल बढाये, बुद्धि बढाये, और भूख भी बढाये।

दूसरा साथी भूख वाली बात तो हितकर नही है। इस राशन के युग मे भूख का बढना अत्यन्त दोषपूर्ण है।

[सब हँसते हैं। पँचकौडी की पत्नी रामदुलारी आती है।]

रामदुलारी यहाँ तुम्हारी भाँग घुट रही है, वहाँ लल्ला का हाल खराब है।

पँचकौडी अरे, तुम जब आओगी कोई बला लेकर आओगी। सारा मजा किरकिरा कर दिया।

रामदुलारी . रहने दो अपना यह मजा! जब देखो निठल्लो को बिठाकर भाँग घोटते रहते हो। शर्म नही आती? अपने बाल-बच्चो की भी चिन्ता नही।

एक साथी · क्या हुआ भाभी जी!

रामदुलारी हुआ क्या, अपना सिर! मेरा भाग्य ही बुरा है, जो इसके घर आई।

पँचकौडी : हाँ-हाँ, नही तो कोई धन्ना सेठ तुम्हे मिल जाता।

रामदुलारी : तुमने बडा नौलखा हार पहना दिया है मुझे। अब यह बताओ, घर चलते हो या नही ? भग की तरग मे ही पडे रहोगे ?

पँचकौडी · बस, एक गिलास चढाकर अभी आया।

भॉग घोटनेवाला . हॉ, भाभी, अब तैयार ही समझो।

दूसरा साथी : हुआ क्या है लल्ला को ?

पँचकौडी अरे कुछ नही, मामूली दस्त हे। साथ ही एक-दो कै आ गई, तो इन्हे शक हो गया। औरत की जात ठहरी—जल्दी घबरा जाती है।

पहला साथी : नही वैद्यजी, इनका घबराना ठीक है। आजकल कुछ हैजे की भी शिकायत सुनी जाती है।

पँचकौड़ी : लेकिन मै ठीक दवा दे आया हूँ। आयुर्वेद मे सब बीमारियो का इलाज है। हैजे की दवा तो मेरी रामबाण है। हॉ, सचमुच—मेरे नुस्खे लेकर ही तो बड़े-बड़े वैद्यो ने अपनी दवाएँ तैयार की हे।

दूसरा साथी : हाँ वैद्यजी ! आपकी तुलना कौन कर सकता है ? यहाँ गाँव में पड़े हैं—शहर मे होते, तो लोग सिर-आँखो पर रखते। हवेलियाँ बन जाती, हवेलियाँ।

[एक १३-१४ साल की लडकी आती है, जो बहुत घबराई हुई जान पड़ती है]

लड़की : भैया ने फिर कै कर दी है। सब कपड़े खराब कर डाले है।

पँचकौड़ी : सचमुच तबीयत ज्यादा खराब जान पडती है। (एक साथी से) ऐसा करो भैया, अभी दौड़कर शहर

जाओ और वहाँ से किसी योग्य डाक्टर को लेकर आओ ।

भाँग घोटनेवाला . लेकिन वैद्यजी, उलटे बाँस बरेली को भेजने की क्या जरूरत है ? आपके रहते डाक्टर की क्या जरूरत है ? भला आप से अधिक वह क्या कर लेगा ?

पँचकौडी : एक से दो अच्छे होते है, भैया ! वैसे तो मुझे अपनी चिकित्सा पर भरोसा है, फिर भी... तुम जानते हो ऐसे वक्त पर बुद्धि भी काम नही देती । (पत्नी से) चलो, लल्लू के कपडे बदल डालो, और देखो, घबराओ मत—भगवान सब ठीक करेगा ।

एक साथी : हाँ, भाभी ! मै अभी डाक्टर को लेकर आता हूँ ।

[सब जाते है]

[पर्दा बदलता है]

तीसरा दृश्य

[एक खुले मैदान मे कन्हैया कुछ अछूत कहे जाने वाले लोगो को पढा रहा है । पढने वालो मे बालक-बालिकाएँ भी हैं—युवक-युवतियाँ भी हैं—एक-दो वृद्ध महाशय भी हैं ।]

एक बूढा : भैया, हमारे साथ आप क्यो माथा-पच्ची करते है—कही बूढे तोते भी पढे है ?

कन्हैया : क्यो नही चाचाजी, फारसी के एक बहुत बडे कवि हुए हैं, शेख सादी । उन्होने ४० वर्ष की अवस्था के बाद पढना शुरू किया था । इसी तरह संस्कृत के

महाकवि कालिदास ने भी वचपन मे कुछ नही पढ़ा था। विद्या पढने के लिए कोई भी अवस्था ठीक है।

एक लड़का : (स्लेट दिखाता हुआ) मास्टरजी यह सवाल नही आता।

कन्हैया : (स्लेट हाथ मे लेकर, देखकर) अरे! यह क्या किया है? दो और दो कितने होते है?

लडका : जी, चार।

कन्हैया : यहाँ पाँच क्यो लिखे? तुम ध्यान नही देते। जाओ, सवाल को फिर करो। (लडका चला जाता है)

दूसरा लडका : मास्टर जी, मै कल से पढने नही आऊँगा।

कन्हैया : क्यो घसीटा?

घसीटा : अम्मा कहती थी कि गॉव वाले कहते है कि अगर तुम लोग मास्टर कन्हैयालाल से कोई सरोकार रखोगे, उनसे बच्चो को पढवाओगे, तो इस गॉव से निकलवा दिए जाओगे।

एक बूढा : हॉ, ऐसी चर्चा गाँव में है तो सही। वे कहते हैं कि पढ-लिखकर ये कमीने लोग वराबरी करेगे।

कन्हैया : हाँ, चाचाजी, ये लोग मुझे भी डराते-धमकाते है। जान से मार देने की धमकी भी देते हैं।

दूसरा बूढ़ा : फिर भैया, तुम क्यों हमारे पीछे अपनी जान जोखम मे डालते हो?

कन्हैया : ऊँच जात मे पैदा होने के पाप का प्रायश्चित्त कर रहा हूँ। ससार मे न कोई बडा है, न कोई छोटा। विद्या प्राप्त करने का सवको अधिकार है और सवके

साथ एक-सा बर्ताव होना चाहिए । आप सबको समाज मे बराबरी का दर्जा मिलना चाहिए । आपको इसकी मॉग करनी चाहिए—इसके लिए लड़ना चाहिए ।

एक बूढा : जान पड़ता है कि तुम हमारी आजीविका छिनवाओगे ।

[हँसता है]

कन्हैया : ऐसे डरने से काम नही चलेगा । जिस काम को करने का किसी का भी साहस नही होता—सबको घिन आती है—ऐसा कठिन काम आप लोग करते है । सफाई न हो, तो इन ऊँची जात वालो का जीवित रहना भी कठिन हो जाय । इसके बदले मे क्या देते है ? ये तुम्हे बड़ा उपकार दिखाते है, चार आने–आठ आने महीने और जूठी रोटियो के टुकडे । नही चाचा, तुम्हें इस अन्याय के विरुद्ध आन्दोलन उठाना चाहिए ।

रधिया : (कन्हैया के पास आकर) मास्टरजी, मैंने एक कविता लिखी है । (एक कागज कन्हैया की तरफ़ बढाती है)

कन्हैया : तुम्ही सुनाओ, गाकर । आजकल तुम खूब अच्छा लिखती हो ।

रधिया : (गाकर कविता सुनाती है)

देखते सब जिन्दगी को, कौन उसको आँकता है ?

जन्म पाया है मुसीबत,
मे, मुसीबत में जिएँगे ।

खून अपना पी रहे हैं,
खून अपना ही पिएँगे।
हैं हजारों घाव दिल में,
हम उन्हें कब तक सिएँगे।

देखने तस्वीर दिल की, कौन दिल में झाँकता है !
देखते सब जिन्दगी को, कौन उसको आँकता है ॥

कन्हैया : वाह रधिया ! तुमने तो कमाल कर दिया ! और सुनाओ।

वत्तियाँ हम विश्व-दीपक,
की बने जलते रहेंगे।
आग में पलते रहे हैं,
आग में पलते रहेंगे।
खाक होने जा रहे पर,
आँख में खलते रहेंगे।

स्वर्ग का मालिक गरीबों को नरक में हाँकता है।
देखते सब जिन्दगी को, कौन उसको आँकता है ॥

नीचतर जीवन हमारा,
नीचता करते रहेंगे।
पाप में पैदा हुए हैं,
पाप में मरते रहेंगे।
लाल आँखें पुण्य की हम,
देख कर डरते रहेंगे।

दोष दिखलाते सभी पर कौन उनको ढाँकता है।
देखते सब जिन्दगी को, कौन उसको आँकता है॥

देश को आज़ाद करने,
चल पड़े नेता हमारे।
स्वर्ग-भू पर आ रहा है,
हँस रहे नभ के सितारे।
चल रहे चप्पू हवा मे,
आ रही नैया किनारे।

कौन इन उजड़े घरो की खाक आकर फाँकता है।
देखते सब जिन्दगी को, कौन उसको आँकता है॥

कन्हैया : वाह, खूब, जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी। कहो चाचाजी, कितना अच्छा लिखा है रधिया ने! कौन कहता है कि आप लोगो मे बुद्धि नही होती। अवसर मिले, तो आप लोग बड़े-बडे काम कर सकते है। अच्छा, अब आज हमारा स्कूल ख़तम होता है।

[सब उठकर चले जाते है]

[पर्दा बदलता है]

चौथा दृश्य

[पँचकौडीदाम के मकान के बाहर। रधिया की माँ बदहवास-सी आती है।]

रधिया की मा : (पुकारती है) वैद्यजी महाराज! वैद्यजी महाराज!!

[अन्दर से पँचकौडी और डाक्टर नवनीतराय बाहर निकलते हैं]

पँचकौडी : महाराज, बच्चे की दशा कैसी है ?

डाक्टर : मैने इन्जैक्शन लगा दिया है। बच्चा बच जायगा। चिन्ता न कीजिए।

पँचकौड़ी : परमात्मा आपको सुखी रखे।

डाक्टर : अच्छा, देखो ! दवाई मे जितना पानी मैने मिलाया है, इससे अधिक न मिलाइएगा।

रधिया की मा : वैद्यजी, मुझ पर कृपा करो। मेरी रधिया को हैजा हो गया है।

पँचकौडी . हैजा हो गया है, तो दवा ले जा।

रधिया की मा : जरा देख लेते तो ·।

पँचकौडी : मुझे भी कन्हैया की तरह भ्रष्ट समझ लिया है तूने। अरे ! ब्राह्मण का बेटा भगी के घर कैसे जायगा ?

रधिया की मा : एक जान का सवाल है। मै आपके पैरों पड़ती हूँ।

[पैरो पर गिरना चाहती है। पँचकौडीदास चौककर दूर हो जाते हैं।]

डाक्टर नवनीतराय : (जो अभी तक चुपचाप इस घटना को देख रहे थे—कुछ मुसकराते हुए बोलते है) क्या बात है वैद्यजी, ऐसे चौके क्यो ? क्या साप काटने आया है ?

पँचकौडी : अभी नहाना पड जाता। इन लोगो ने धर्म-कर्म सब छोड दिया है।

डाक्टर : अच्छा तो आप भगियो को कभी नही छूते ?

पँचकौडी : हम तो इनकी छाया से भी बचते है।

डाक्टर : (मुस्कराते हुए) आपको पता है, मै कौन हूँ ?

पँचकौड़ी : आप· ·आप ठहरे बड़े आदमी ···।

डाक्टर : मै भी जात का भगी हूँ ··।

पँचकौडी : भगी ···?

डाक्टर : हॉ, भगी। जब तक मै भंगी रहा, तब तक लोगो ने मुझे इसी तरह ठुकराया, जैसे इस गरीबनी को आप ठुकरा रहे है। मै जब तक हिन्दू था, भगवान का भक्त था, चोटी रखता था, भजन गाता था, तब तक अछूत था। ईसाई बन जाने से मानो मेरी काया ही बदल गई। आप लोग अब मेरे पैरो पड़ते है—घर में बुलाते है—मेरे हाथ की दवा पीते है (रधिया की मा से) चलो बहन, मै तुम्हारी बच्ची का इलाज करूँगा।

[डाक्टर और रधिया की मा चले जाते हैं। पँचकौडी हक्का-बक्का होकर रह जाता है।]

[एक मिनट के बाद]

पँचकौडी : सुनती हो, ओ ललुआ की अम्माँ !

पँचकौडी की पत्नी : (आकर) क्या बात है—क्या हो गया ? क्यो शोर मचा रखा है ?

पँचकौडी . अरी अपना तो धर्म नष्ट हो गया ! इन अग्रेजी कपड़ो में पता ही नही चला कि यह डाक्टर भगी था।

पँचकौडी की पत्नी : भगी !

पँचकौड़ी . हाँ, भगी ! वह दवा फिकवा दो।

पँचकौडी की पत्नी : लेकिन दवा से तो बच्चे को कुछ आराम है। धर्म क्या बच्चे से भी ज्यादा प्यारा है ? फिर गाँव वाले क्या जानें कि यह डाक्टर भगी था। बात यो ही दबी रहने दो।

पँचकौड़ी : वह चुड़ैल रधिया की माँ सब जान गई है। वह गाँव-भर मे फूंक देगी।

पँचकौड़ी की पत्नी : उसे दो रुपये पकडाकर उसका मुँह बद कर देना। इन कमीनो का क्या ? दो पैसे मे इनको इज्जत-आबरू सब छीन लो।

पँचकौडी . नही, अब ये ऐसे नही रहे। उस कन्हैया ने इन सबको बिगाड दिया है।

[अदर से आवाज आती है। 'अम्मा—ओ अम्मा !' दोनो अदर चले जाते है।]

[पर्दा वदलता है।]

पाँचवाँ दृश्य

[स्थान—रधिया का मकान। रधिया एक चारपाई पर रोगिणी की हालत मे लेटी हुई है। कन्हैया वैठा है। मकान मे ग़रीबी के चिह्न तो हैं—लेकिन हर तरफ साफ-सुथरापन है।]

रधिया · जी बडा घबराता है, कन्हैया !

कन्हैया . घबराओ नही, रधिया ! माँ जी पँचकौड़ी के यहाँ गई है—वह आकर दवा देगा।

रधिया : वह चाण्डाल हमारे घर कभी नही आएगा। मै तो उसकी दवा खाऊँगी भी नही। मुझे उसकी सूरत से घिन आती है।

कन्हैया : किसी से घृणा करना अच्छा नही, रधिया !

रधिया : वे लोग भी तो हमें धिक्कारते है, भैया !

कन्हैया . यह हमारी जात का दुर्भाग्य है, और क्या ?

[डाक्टर नवनीतराय और रधिया की मां आते हैं।]

रधिया की माँ : बेटी, भगवान को सबकी चिंता है—देखो न, देवदूत की तरह डाक्टरजी हमारे यहाँ आ गये हैं।

डाक्टर : (रधिया की परीक्षा करता हुआ) घबराओ नही बेटी ! मैं तुम्हे जल्दी अच्छा कर दूँगा। (रधिया की मा से) थोड़ा पानी गरम करो। इंजैक्शन लगाना होगा।

[डाक्टर इंजैक्शन की तैयारी करता है। रधिया की मा चली जाती है।]

डाक्टर : (कन्हैया को देखकर) जान पड़ता है, आपको कही देखा है।

कन्हैया : आप शायद लाहौर से आए हैं ? मैं भी वही का रहने वाला हूँ।

डाक्टर : मेरे एक भाई डाक्टर की शक्ल आपसे मिलती है। वे बेचारे फौजी नौकरी मे चले गए और लौटकर नही आए।

कन्हैया : हाँ, मेरे एक साथी डाक्टर थे। फौज की नौकरी में भी थे। क्या उनका कोई समाचार मिला है ?

डाक्टर . वह बचपन से मेरे मित्र थे। तुम नही जानते—मैं भी इन्ही अछूत कहे जाने वालो मे था—लेकिन लोगों के अत्याचारो ने मुझे तग कर दिया। ईसाई हो जाने पर अब सभी मेरा आदर करते हैं।

कन्हैया : लेकिन अछूत से ईसाई हो जाना तो इस बीमारी का इलाज नही है, डाक्टर साहब ! हमें तो ऊँची जाति वालों के हृदय बदलने की और अछूत कही जानेवाली जातियो का रहन-सहन बदलने की जरूरत है। मेरे

जैसे पागलों को दुतरफा लड़ाई करनी पड़ती है। उधर इनकी गिरी हुई आत्मा को उठाना पडता है—इधर उनके अत्याचारी हृदय को बदलने की कोशिश करनी पड़ती है।

डाक्टर . अर्थात् आप दोनों का सुधार कर रहे हैं।

[रधिया की मा पानी लेकर आती है। डाक्टर इंजैक्शन लगाता है। इतने मे पँचकौडी आता है।]

पँचकौडी : (डाक्टर से) डाक्टर साहब ! मेरे लडके की हालत फिर बिगड़ गई है। आप इसी समय चलने की कृपा करे।

डाक्टर : लेकिन मै तो भगी हूँ—और मेरी दवा से तो आपका धर्म ....।

पँचकौडी . मुझ पर दया करो डाक्टरजी ! मै भूल पर था।

डाक्टर : आपके घर जाने से मेरा धर्म नष्ट होगा। मै नही जाऊँगा। आपने मेरी एक बहिन का अपमान किया है।

रधिया की माँ : वैद्यजी ने मेरे घर आकर अपना धर्म तो भ्रष्ट कर ही लिया।

डाक्टर वैसे तो मुझे अपने घर बुलाकर और छूकर ही इनका धर्म जाता रहा।

पँचकौडी : महाराज, क्षमा !

रधिया : मनुष्य का धर्म दया करना है—और डाक्टर का विशेष कर। ये अपना धर्म भूल गए, लेकिन आप

रधिया की माँ : बेटी, भगवान को सबकी चिंता है—देखो न, देवदूत की तरह डाक्टरजी हमारे यहाँ आ गये है।

डाक्टर : (रधिया की परीक्षा करता हुआ) घबराओ नही बेटी ! मै तुम्हे जल्दी अच्छा कर दूँगा। (रधिया की मा से) थोड़ा पानी गरम करो। इंजैक्शन लगाना होगा।

[डाक्टर इजैक्शन की तैयारी करता है। रधिया की मा चली जाती है।]

डाक्टर : (कन्हैया को देखकर) जान पड़ता है, आपको कही देखा है।

कन्हैया : आप शायद लाहौर से आए है ? मै भी वही का रहने वाला हूँ।

डाक्टर : मेरे एक भाई डाक्टर की शक्ल आपसे मिलती है। वे बेचारे फौजी नौकरी मे चले गए और लौटकर नही आए।

कन्हैया : हाँ, मेरे एक साथी डाक्टर थे। फौज की नौकरी मे भी थे। क्या उनका कोई समाचार मिला है ?

डाक्टर : वह बचपन से मेरे मित्र थे। तुम नही जानते—मैं भी इन्ही अछूत कहे जाने वालो मे था—लेकिन लोगों के अत्याचारो ने मुझे तग कर दिया। ईसाई हो जाने पर अब सभी मेरा आदर करते है।

कन्हैया : लेकिन अछूत से ईसाई हो जाना तो इस बीमारी का इलाज नही है, डाक्टर साहब ! हमे तो ऊँची जाति वालों के हृदय बदलने की और अछूत कही जानेवाली जातियो का रहन-सहन बदलने की जरूरत है। मेरे

जैसे पागलों को दुतरफा लड़ाई करनी पडती है। उधर इनकी गिरी हुई आत्मा को उठाना पडता है—इधर उनके अत्याचारी हृदय को बदलने की कोशिश करनी पडती है।

डाक्टर : अर्थात् आप दोनो का सुधार कर रहे हैं।

[रधिया की मा पानी लेकर आती है। डाक्टर इजैक्शन लगाता है। इतने मे पँचकौडी आता है।]

पँचकौडी : (डाक्टर से) डाक्टर साहब ! मेरे लडके की हालत फिर बिगड गई है। आप इसी समय चलने की कृपा करे।

डाक्टर : लेकिन मै तो भगी हूँ—और मेरी दवा से तो आपका धर्म ....।

पँचकौडी : मुझ पर दया करो डाक्टरजी ! मै भूल पर था।

डाक्टर : आपके घर जाने से मेरा धर्म नष्ट होगा। मै नही जाऊँगा। आपने मेरी एक बहिन का अपमान किया है।

रधिया की माँ : वैद्यजी ने मेरे घर आकर अपना धर्म तो भ्रष्ट कर ही लिया।

डाक्टर : वैसे तो मुझे अपने घर बुलाकर और छूकर ही इनका धर्म जाता रहा।

पँचकौडी : महाराज, क्षमा !

रधिया : मनुष्य का धर्म दया करना है—और डाक्टर का विशेष कर। ये अपना धर्म भूल गए, लेकिन आप

अपना धर्म नही भूलिए। जाइए–इनके लडके के प्राण जरूर बचाइए।

कन्हैया : (पँचकौडी से) देखा, जिन्हे आप नीच कहते है, उनका हृदय कितना ऊँचा होता है!

डाक्टर : लेकिन वैद्यजी, आप मेरी बहिन के पैर छुएँ, तभी मै आपके घर चलूंगा।

[पँचकौडी रधिया की मा के पैरो मे गिरने लगता है, रधिया की मा हट जाती है

रधिया की मा · आप क्यो मुझे पाप मे घसीटते है ? वैद्यजी कुछ भी हो, हमारे लिए तो आप सदा बडे है।

कन्हैया : (वैद्यजी को उठाता है) सुबह का भूला शाम को भी घर लौट आए तो वह भूला नही कहलाता।

[पटाक्षेप]

प्रश्न

१—डाक्टर और पँचकौडीदास के चरित्रो का विश्लेपण कीजिए।

२—इस एकाकी के लिखने मे एकाकीकार का प्रमुख उद्देश्य क्या रहा है ?

३—'जो मनुष्य की पूजा नहीं कर सकता, वह भगवान की पूजा कैसे कर सकता है ?' यह वाक्य इस एकाकी के किस पात्र के मुख से कहलाया गया है और किस प्रसग मे ?

अपना धर्म नही भूलिए। जाइए—इनके लडके के प्राण जरूर बचाइए।

कन्हैया : (पँचकौडी से) देखा, जिन्हे आप नीच कहते हैं, उनका हृदय कितना ऊँचा होता है!

डाक्टर : लेकिन वैद्यजी, आप मेरी बहिन के पैर छुएँ, तभी मैं आपके घर चलूँगा।

[पँचकौडी रधिया की मा के पैरों मे गिरने लगता है, रधिया की मा हट जाती है

रधिया की मा : आप क्यो मुझे पाप मे घसीटते हैं? वैद्यजी कुछ भी हो, हमारे लिए तो आप सदा बड़े हैं।

कन्हैया : (वैद्यजी को उठाता है) सुबह का भूला शाम को भी घर लौट आए तो वह भूला नही कहलाता।

[पटाक्षेप]

प्रश्न

१—डाक्टर और पँचकौडीदास के चरित्रों का विश्लेपण कीजिए।

२—इस एकाकी के लिखने मे एकाकीकार का प्रमुख उद्देश्य क्या रहा है?

३—'जो मनुष्य की पूजा नही कर सकता, वह भगवान की पूजा कैसे कर सकता है?' यह वाक्य इस एकाकी के किस पात्र के मुख से कहलाया गया है और किस प्रसंग मे?



श्री रामकुमार वर्मा

रेशमी टाई

पात्र

नवीनचन्द्र राय—इन्स्योरेंस कम्पनी का एजेन्ट और साम्यवाद का विश्वासी आयु ३० वर्ष

लीला—उसकी सुशीला स्त्री, आयु २२ वर्ष

सुधालता—स्वयसेविका आयु, १८ वर्ष

चन्दन—नवीनचन्द्र का नौकर, आयु ४५ वर्ष

नाटककार का परिचय

जीवन-परिचय

डा० रामकुमार वर्मा की जन्मभूमि मध्यप्रदेश है। प्रयाग विश्वविद्यालय से एम० ए० करने के उपरात आप प्रयाग विश्वविद्यालय मे ही हिन्दी-साहित्य के प्राध्यापक नियुक्त हो गए। नागपुर विश्वविद्यालय ने आपकी समालोचनात्मक पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पर आपको 'डाक्टर' की उपाधि दी।

आधुनिक एकाकी नाटक के विकास में आपकी साधना अकथनीय है। आपका रग-मंच से निकट सम्बन्ध रहा है। फलतः आपके नाटको मे रग-मंच की आवश्यकताओ की पूर्ति का सफल प्रयत्न रहता है। आपके एकांकी पूर्णतः अभिनेय हैं। आपने सब प्रकार के नाटक—सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, भावना प्रधान—लिखे है।

आपकी संवाद-शैली अतिशय सजीव एवं सुगठित होती है। कवि होने के नाते आपकी भाषा मे आलकारिकता एवं कवित्व की स्वाभाविक छटा मिलती है। ओज, सरसता और श्रुति-मधुरता आदि गुण आपकी भाषा की विशेषताएं है।

प्रस्तुत एकाकी

'रेशमी टाई' मानव की एक कमजोरी—दूसरे की भूल से लाभ उठाने की नीयत—को आधार बनाकर लिखा गया सफल एकांकी है। इसका नायक नवीन अपनी पत्नी लीला के दृढ़ चरित्र से प्रभावित होकर अपनी खोटी नीयत बदल डालने का संकल्प कर लेता है। और इस प्रकार पाठक के मन पर भी चरित्रवान और सदाचारी बनने की यह एकाकी अमिट छाप छोड देता है। प्रत्येक पात्र का चरित्र बड़ी ही खूबी से उभर कर

सामने आता है। डा० रामकुमार वर्मा के बहुत से सफल एकांकियो मे से यह एकांकी भी प्रमुख है।

कृतियाँ

ध्रुवतारिका, पृथ्वीराज की आँखें, सप्तकिरण, रेशमी टाई, शिवाजी, आठ एकांकी नाटक, कौमुदी महोत्सव, चार ऐतिहासिक एकांकी-नाटक।

जौहर, अंजलि, रूपराशि, चित्ररेखा—काव्य।

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, कबीर का रहस्यवाद, साहित्य समालोचना—समालोचना।



पहला दृश्य

[एक सुसज्जित कमरा। ड्राइंग और ड्रेसिंग रूम जैसे मिल गए हो। एक ओर कार्ल मार्क्स और दूसरी ओर ग्रेटा गार्बो के विशाल चित्र। बगल मे एक बडा शीशा। कमरे के एक कोने मे एक टेबुल है, जिस पर कुछ वस्तुएँ और कागज रखे हुए है। दूसरी ओर एक आलमारी है, जिसमें नीचे दो दराज हैं। बीचो-बीच एक टेबुल है, जिस पर एक फूलदान मे गुलदस्ता लगा हुआ है। आमने-सामने दो कुर्सिया पडी है। जमीन पर मखमली फर्श बिछा हुआ है। दीवाल पर एक घडी, जिसमे ८ बजकर १० मिनट हो गए है। बगल मे कैलेंडर।]

[नवीनचद्र नेपथ्य की ओर बगल मे दरवाजे तक बढकर बडे ध्यान से देख रहा है)

नवीनचद्र. (दरवाजे की ओर धीरे-धीरे बढकर देखता हुआ) इतनी ठड मे स्नान ······· ! पूजा ·· ···। (एकटक देखते हुए रुककर) फेयफुल वाइफ' ······स्वीट लीला। (फिर रुककर लौटते हुए अपनी ओर देखकर) और मैं ? (बीच मे रखी हुई टेबुल के समीप आता है। दराज खोलकर एक बंडल की रस्सी-काटकर उसे खोलता है। दो रेशमी टाई निकलती हैं। एक टाई को उलट-पुलट कर गौर से देखता है। हाथ मे लेकर झुलाकर, कुछ ऊपर उठाकर देखते हुए) ब्यूटीफुल ! (दूसरे हाथ मे लेकर) एस्प्लेनडिड ! (चित्र की ओर देखकर) लाइक दैट ऑव् ग्रेटा गार्बो ! शैल आई ट्राई ? (शीशे के समीप जा ओठ से सीटी बजाता हुआ टाई पहनता है

हेराल्ड वाइल्ड का 'आई हीयर यू कालिंग मी' गाना गुनगुनाते हुए टाई की नॉट् बाधता है। रुककर खिडकी के पास जाते हुए) अरे चन्दन, ओ चन्दन ! (खिड़की से दाहिनी ओर झाँकते हुए) अरे, आज चा-वा लायगा या नही ?

चन्दन : (नेपथ्य से) लाया हुजूर।

नवीन : (टाई की नॉट् ठीक करते हुए) इन कम्बख्तों का सूरज नौ बजे निकलता है। अभी तक चा तैयार नही हुई। रासकल्स, ईडियट्स !

(चदन का चा लेकर प्रवेश)

नवीन : (टाई पर हाथ फेरते हुए) क्योंरे, जब तक मै चा न मँगाऊँ, तब तक आराम से बैठा रहता है। हाथ पर हाथ धरे ?

चन्दन : (बीच वाली टेबुल पर ट्रे रखते हुए) हुजूर, टोस्ट मे मक्खन लगा रहा था।

नवीन : और मै तेरे सिर पर चपत लगाऊँ तो ? ईडियट, (घड़ी की ओर देखते हुए) आठ बज गए, जानता है ?

चन्दन : हुजूर, आज दिन मालूम नही पड़ा। खूब कुहरा पड़ रहा था हुजूर।

नवीन . तेरी अक्ल पर ? बदमाश, चा किस लेबिल की डाली ? पीले की या लाल की ?

चन्दन : हुजूर, लाल की।

नवीन : हूँ, (शान्त होकर) उनकी पूजा खतम हो गई ?

लीला : (आते हुए) हो गई, आ रही हूँ। सुबह से यह कैसा गुस्सा ?

नवीन : (कुर्सी से उठते हुए) गुस्सा न आये ? आठ बज जाते है, और चा नही आती ! (झल्लाकर सिगरेट जलाता है)

लीला : (संतोष देते हुए) सचमुच नाराजी की बात है ! मैं कल से और भी सुबह उठूंगी ।

नवीन : तुम क्यो उठोगी ? ये नौकर किसलिए हैं ?

लीला : (मुस्कुराते हुए कुर्सी पर बैठकर) गुस्सा दिलाने के लिए, इस ठड मे गर्मी लाने के लिए !

नवीन : (कुछ मुस्कुराकर चन्दन की ओर देखते हुए) ईडियट्, जाओ, बाहर बैठो । (चन्दन चला जाता है)

लीला : (शान्ति से) इतने नाराज होकर बाहर जाओगे तो फिर केस कैसे मिलेगे ? इसी महीने के आखीर तक तो आपको २५ हजार इश्योर करने है, आज तारीख १८ हो चुकी । (कैलेन्डर पर दृष्टि)

नवीन : (झल्लाकर) ऐसी हालत मे कर चुका (चा की केटली उठाता है)

लीला : नही लाओ, मैं चा बनाऊँ । (केटली लेती है) तुम तो पच्चीस क्या पचास हजार कर लोगे । (प्याले मे चा डालते हुए) अब लोग इश्योरेंस की जरूरत समझने लगे है । १०-१५ बरस पहले तो लोग समझते थे कि इश्योरेंस अपशकुन है । मरने की बात अभी से सोचते है । (चा का रग देखते हुए) देखो, कितना अच्छा कलर है !

नवीन · (प्याले को देखकर) हूँ ।

लीला : सचमुच इस ठड मे चा एक चीज है। कंपनी वालो को ठड मे चा की कीमत वढा देनी चाहिए। क्यो ?

नवीन : कही अपनी यह राय किसी कपनी को भेज भी न देना।

लीला : तो मुफ्त मे तो भेजूंगी नही। चीनी ?

नवीन : डेढ चम्मच।

लीला (डेढ चम्मच चीनी डालकर दूध मिलाने से पहले) देखो,चा का रग तुम्हारी रेशमी टाई से मिलता-जुलता। (रुक कर प्रश्न के स्वर मे) क्या बाहर जाने को तैयार हो गए ? (दूध डालती है)

नवीन . नही तो।

लीला . यह सुवह से ही टाई पहन रखी है।

नवीन : (चा को ओठो से लगाते हुए) यों ही देखना चाहता था, कैसी लगती है ? नई है—कल ही लाया हूँ।

लीला : (चा पीते हुए प्रशसा के स्वरो मे) अच्छी लगती है।

नवीन : (उमग से) अच्छी ? वहुत अच्छी। ग्रेटा गार्वो जैसी-देखो (चित्र की ओर सकेत करता है)

लीला : (ग्रेटा के चित्र की ओर देखकर) सचमुच इस समय आप ग्रेटा ही मालूम हो रहे है।

नवीन : (झेंपकर) हिश्, और सुनो। मुफ्त-विलकुल मुफ्त।

लीला : कैसे ? क्या सिगरेट के कूपन-प्रेजेण्ट मे ?

नवीन . (सिर हिलाकर) ऊँ– हूँ।

लीला : फिर किसी ने प्रेजेन्ट की होगी ?

नवीन : (चा का घूंट लेकर) ऊँ- हूँ !

लीला : अच्छा मैं समझ गई । (रुक कर) दद्गुगजकेसरी का उपहार !

नवीन : (हँसकर) पागल !

लीला : फिर क्लोयरेस सेल में ?

नवीन : फेल ।

लीला : (हँसकर) अच्छा, इस वार ठीक वतलाऊँ । एक रुपये मे १४४ चीजो के साथ इमी वाच और टाई !

नवीन : (मुस्कुराकर) नानसेन्स, (सिगरेट का धुंआं छोडता है)

लीला . फिर मैं नही समझी ।

नवीन : लो समझो । मैं कल गया था मदन खन्ना के यहाँ । वहुत सी 'वेरायटीज' देखी । दो टाई पसन्द की । ली एक ही । लेकिन उसने दोनो टाई वण्डल में वाँध दी और दाम एकही के लिए ।

लीला : (चा का घूंट लेते हुए) तो यह टाई तुम्हे लौटा देनी चाहिए ?

नवीन क्यो लौटा देनी चाहिए ? आई हुई लक्ष्मी को ठुकरा देना चाहिए ? जो चीज आप-से-आप आजाय—आजाय ।

लीला : यह चोरी नही है ?

नवीन . चोरी क्यो ? मैं उसके सामने लाया हूँ । उसने अपने हाथ ने वण्डल वनाया ।

लीला : पर दाम तो आपने एक ही के दिए ।

नवीन : पर दाम भी उसी ने लिए ।

लीला : नही, यह ठीक नही। इस तरह की भूल तो अक्सर हो ही जाती है।

नवीन : तो जो भूल करे, 'सफर' करे। (दूसरी सिगरेट जलाता है)

लीला : और अगर मदन कहला भेजे कि एक टाई आपके साथ ज्यादा चली गई है तो, तो ?

नवीन : (स्वतन्त्रता से) तो मैं कहला दूंगा कि मै क्या जानूं ? अपनी दूकान मे देखो। कही किसी कपडे मे लिपटी पडी होगी।

लीला : (रुष्ट होकर) यह बात आपके स्वभाव से अब तक नही गई। जब आप पढते थे, तब भी किताबो के खरीदने मे आप ऐसी ही हाथ की सफाई दिख-लाते थे।

नवीन : (सिगरेट का धुआँ छोडकर) और वे लोग हमे कितना लूटते है ! यह भी तो सोचो ?

लीला : रोजगार करते हैं ! न कमाये तो खाये क्या ?

नवीन : (व्यंग से) न कमायें तो खाये क्या ? हमसे एक के चार वसूल करते है ! ऐसे है ये कमाने वाले कमीने पूंजीपति। इन पूंजीपतियो की यही सजा है। जानती हो, कार्ल मार्क्स ने क्या लिखा है ? 'फिला-सोफर्स हिदरटू हैव ओनली इण्टरप्रेटेड दि वर्ल्ड इन वेरियस वेज, दि टास्क इज टु चेंज इट्।' इस ससार को बदलना है।

लीला : यह सिद्धान्त आपने खूब निकाला !

नवीन मेरा सिद्धान्त क्यो, यह तो सोशलिज्म है। डायलेक्टिकल मैटीरियलिज्म।

लीला अपने दुर्गुणो को सोशलिज्म न बनाइए। नही तो देश का एकदम ही उद्धार हो जाएगा।

नवीन : खैर, यह टाई तो इस समय मिस्टर नवीनचन्द्र राय, एम० ए० के कठ की शोभा वढा रही है""और चा दूँ ? तुमने चा वहुत थोडी पी।

लीला : धन्यवाद। मैं पी चुकी।

नवीन : (पुकार कर) चन्दन यह ले जाओ।

चन्दन : (नेपथ्य से) आया हुजूर।

लीला : यह टाई चाहे जितनी अच्छी हो, लेकिन (चन्दन का प्रवेश) आज काफी ठड है। कुहरा वहुत छाया था। ऐसा मालूम होता था कि आज सूरज निकलेगा ही नही। क्यो चन्दन ?

चन्दन . (प्रसन्न होकर) जी हॉ, हुजूर, खूब कुहरा पड रहा था।

लीला (उठ कर) अच्छा, तो मैं जरा गरम कपड़े पहन लूँ।

(प्रस्थान)

चन्दन . (ट्रे ले जाते हुए) हुजूर, अभी-अभी एक लडकी आई है। कुछ कपडे लिए हुए है।

नवीन : (भौंहे सिकोडकर) लडकी है ?

चन्दन हॉ, हुजूर, लडकी है। कुछ वेचना चाहती है हुजूर। अगर हुकुम हो तो—

नवीन . (सोचते हुए) अभी नही। मैं जरा विक्टोरिया पार्क

जाऊँगा। पाँच मिनट के लिए। (सोचकर) ऐ······ ·? अच्छा भेज दे।

(चन्दन का प्रस्थान। नवीन टाई के झूलते हुए छोर को हाथ मे लेकर बार-बार झुलाकर देख रहा है। सुधालता का प्रवेश। खद्दर की वेश-भूषा। उसके हाथो मे खद्दर का एक गट्ठर है। आते ही गट्ठर को जमीन पर रखकर दोनों हाथ जोडते हुए—वन्देमातरम्)

नवीन : (सिर हिलाकर) नमस्ते। कहिए ?

सुधालता : मेरा नाम सुधालता है। मैं स्वय-सेविका हूँ। खद्दर बेचना चाहती हूँ।

नवीन : (दुहरा कर) खद्दर ?

सुधालता : जी हाँ। कल से खद्दर-सप्ताह प्रारम्भ हो गया है। कुछ खद्दर न खरीदिएगा ?

नवीन : खद्दर ? नही, इस समय तो नही, मेरे पास काफी कपडे है। फिर खद्दर मे तो कोई क्वालिटी भी नही है। नो डिजाइन। और आज पहनो—कल मैला।

सुधालता (अनुरोध के स्वर मे) आप लोगो को तो पहनना चाहिए। हाथ का कता और हाथ का बुना पहनने मे कितना सन्तोष··· ·······।

नवीन : इस सायंस की 'एज' में गाधी जी का चरखा। (मुस्कुराकर) ठीक है, एरोप्लेन के रहते हुए बैलगाड़ी से जल्दी पहुँचने की बात ·· ·······।

सुधालता . यह तो स्वावलम्बन की शिक्षा का एक साधन-

मात्र है। उस रोज आपने भी तो जवाहर पार्क मे एक लेक्चर दिया था··· ·····।

नवीन : मैंने तो सोशलिज्म के सिद्धान्त बताये थे।

सुधालता : जी हाँ, पर लेक्चर बड़ा जोशीला था।

नवीन . (प्रसन्न होकर) अच्छा, आपने सुना था ?

सुधालता : जी हॉ, मैं तो वही पास मे खडी थी। पिन ड्राप साइलेंस थी। जब आपका लेक्चर खत्म हुआ, तो लोग कह रहे थे कि अगर ऐसा लेक्चर सुनने के लिए मिले तो हम लोग रोज यहॉ इकट्ठे हो सकते है।

नवीन : (प्रसन्नता से) अच्छा ?

सुधालता कुछ लोग तो आपके लेक्चर की बहुत सी बाते लिखते भी जा रहे थे।

नवीन : अच्छा, मैंने यह नही देखा !

सुधालता . आप तो लेक्चर दे रहे थे। अच्छी भीड थी। ऐसा लेक्चर बहुत दिनो से नही सुना था।

नवीन : (नम्रता बतलाते हुए) मे तो किसी तरह अपने विचार प्रकट कर लेता हूँ। बस, यही मुझे आता है, अच्छा खैर आपके पास कैसे डिजाइन्स है ?

सुधालता · (प्रसन्न होकर) देखिए। बहुत तरह के है। (गट्ठर खोलती है। एक थान दिखलाते हुए) यह गाधी-आश्रम अहमदाबाद का है। चैक। दस आने गज। बहुत अच्छा। जितना धुलेगा, उतना ही साफ आवेगा।

नवीन (हाथ में लेते हुए) अच्छा है, कुछ खुरदरा है। यों तो…

सुधालता : (दूसरा थान लेकर) यह मेरठ का है। इससे अच्छा सूत तो इस डिजाइन का कहीं मिलेगा ही नहीं। सिर्फ एक रुपया गज है।

नवीन—(हाथ में लेकर देखता है) हूँ।

सुधालता . और यह देखिए पीलीभीत का। आपके लायक। सवा रुपया गज। इसमें आपका सूट बहुत अच्छा बनेगा। आपके सूट में तो सिर्फ सात गज ही लगेगा ?

नवीन · हाँ, नहीं तो क्या ? यही सात गज।

सुधालता तो फिर इसे खरीद लीजिए। दूँ सात गज ?

नवीन है तो अच्छा ! सबसे अच्छा यही है। लेकिन और इससे अच्छा डिजाइन नहीं ?

सुधालता इससे अच्छा डिजाइन दो-तीन दिन में आ जायगा।

नवीन तो फिर तभी न लाइए !

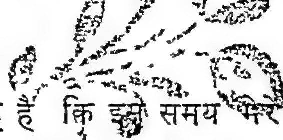
सुधालता · उस वक्त भी लाऊँगी। अभी भी ले लीजिए। क्या इनमें कोई भी ठीक नहीं है ?

नवीन हाँ, ठीक तो है, पर···· कुछ ठीक नहीं है।

सुधालता यों पहनने की इच्छा हो तो ठीक है, नहीं तो कुछ भी ठीक नहीं।

नवीन · फिर कभी आइए।

सुधालता . तो क्या मैं निराश होकर जाऊँ ? इधर आपका इन्श्योरेंस बिजनेस भी तो चल निकला है। अब तो काफी रुपया आता होगा।



नवीन वात यह है कि इस समय मेरे पास कुछ नही है। विजनेस चल भी भले हो निकले, लेकिन मुसीवत यह है कि कई दोस्तो की लाइफ इश्योर करने से उनको प्रीमियम मुझे अपने पास से देनो पड जाती है। उनके पास जब रुपये होगे तब कही वे मुझे देगे। इसी महीने मे करीव ३०० रु० अपने पास से देने पडे।

सुधालता ठीक है, लेकिन खादी-सप्ताह मे आपको कुछ लेना ही चाहिए। देखिए, शहर मे मैने दो दिनो मे १७५ रु० को खादी वेच डाली।

नवीन खैर, अभी तो पॉच दिन बाकी है। फिर आइए। उस समय तक आपके नए डिजाइन्स भी आ जावेगे।

सुधालता तो फिर मै ऐसे ही वापस ·· ·?

नवीन फिर आइए। मुझे इस समय जरा विक्टोरिया पार्क जाना है ?

सुधालता अच्छी वात है। जल्दी मे कपड़ा खरीदना भी नहीं चाहिए। मै फिर दो-तीन दिन वाद आऊँगी।

नवीन . हॉ, (अनिश्चित रूप से) फिर देखूंगा।

सुधालता : (गट्ठर वाँधते हुए) अच्छा फिर आऊँगी। जव आपको ये पसन्द नही, तो फिर इन्हे मै आपको देना भी पसन्द नही करूँगी। अच्छा (हाथ जोडकर) वन्दे।

(नवीन सिर हिलाकर हाथ जोडते हैं। उसकी ओर गौर से देखते हैं। सुधा जाती है, पर फिर वाहर से लौटकर—)

मै एक विनय करना चाहती थी।······मै · ·

नवीन · हाँ, कहिए।

सुधालता : मैं १४ नं० स्टेनली स्ट्रीट में कपडा बेचकर वही अपना गज भूल आई। आपका मकान तो शायद नं० २० है।

नवीन : हाँ।

सुधालता . तो आपको कोई आपत्ति तो न होगी, अगर मैं अपना गट्ठर यही छोड जाऊँ ? ५–१० मिनट मे ले जाऊँगी। वहाँ से अपना गज ले आऊँ। रास्ते मे यह गट्ठर व्यर्थ क्यो ढोऊँ ? और फिर मुझे आगे ही जाना है।

नवीन : (स्वीकृति से सिर हिलाकर) नही, मुझे कोई आपत्ति नही है। आप रख जाइए। अगर मै आपके आने तक भी न आ सकूँ, तो मेरा नौकर चन्दन आपको यह गट्ठर दे देगा। मै नौकर से कह दूँ (पुकार कर) अरे, ओ चन्दन !

चन्दन : (आकर) जी, हुजूर !

नवीन : देखो, अगर मे यहाँ न रहूँ तो यह गट्ठर इन्हे दे देना, इनका नाम श्रीमती सुधालता है। समझे।

चन्दन : बहुत अच्छा, हुजूर।

नवीन : (सुधा से) ठीक ?

सुधालता · धन्यवाद। (प्रस्थान)

(नवीन सिगरेट जलाता है। उसकी नजर लीडर पर पडती है।)

अच्छा ? आज का पेपर पढ ही नही पाया। देखूं !

(लीडर देखता है, एक मिनट तक पन्ने लौटने पर) कोई खास बात नही । (लीडर के पृष्ठ पर विज्ञापन देखकर) अच्छा? टूटल टाईज—प्राइस रूपी वन एट ईच । मदन ने मुझसे वन ट्वैल्व लिए । फूल !

[सोचता है । उसकी दृष्टि खद्दर के गट्ठर पर पडती है । वह धीरे से उठता है । गट्ठर खोलता है । उसमे से एक थान निकालता है । उसे कुछ देर देखता है, फिर सोचते हुए उसे खोलकर देखता है । अपने कोट पर रखकर सूट का अनुमान करता है । सिर हिलाकर सोचते हुए आलमारी के दराज मे बन्द कर देता है । फिर चुपचाप आकर गठरी उसी तरह बाँध देता है । और लौटकर अखबार पढने लगता है । कभी आलमारी को देखता है, कभी खद्दर के गट्ठर को । लीला का प्रवेश]

लीला . (नवीन को देखकर) आप तो शायद विक्टोरिया पार्क जाने वाले थे ?

नवीन . हाँ, जरा पेपर पढने लगा । (सम्भल कर) अब जा रहा हूँ ।

लीला : कोई खास खबर ?

नवीन : टूटल टाई की कीमत वन् एट् है । मदन ने मुझ से वन् ट्वैल्व लिए ।

लीला : (मुस्कुराकर) क्या यह खबर छपी है ?

नवीन : नही जी । टूटल टाईज का विज्ञापन है । उसने मुझसे चार आने ज्यादा लिए । देखो उसकी बेईमानी ?

लीला : खैर जाने भी दीजिए । समझ लीजिए, चार आने

पैसे उसे दान मे दिए । (खद्दर के गट्ठर को देखकर) यह गठरी कैसी ?

नवीन : एक स्वय सेविका खद्दर बेचने आई थी। वह अपना गज यही कही भूल आई । लेने गई है। गट्ठर यही छोड गई है । कहती थी, रास्ते मे व्यर्थ बोझ क्यो ढोऊँ ?

लीला : तो क्या कुछ खरीदा आपने ?

नवीन : नही तो, खद्दर मुझे कभी पसन्द नही आया।

लीला : आपको तो टाई पसन्द आती है ?

नवीन · (लज्जित होकर) लीला, मुझसे व्यंग न करो । तुम्हारा उपदेश मैं बहुत सुन चुका । अच्छा, अब जाता हूँ ।

लीला : सुनिए, सुनिए, (नवीन का प्रस्थान) अच्छा, चले गए ? पूछती, मेरी सोने की अगूठी कहाँ गई । (टेबुल के दराज मे खोजती है । चन्दन को पुकार कर) चन्दन !

चन्दन : जी, हुजूर ।

लीला : तुझे मालूम है, मेरी सोने की अगूठी कहाँ है ?

चन्दन . हुजूर आप कल तो पहने थी । आपने उतार कर कही रख दी होगी ।

लीला : उतार कर रख दी, तभी तो हाथ मे नही है ।

चन्दस : आपने बाथ-रूम मे तो नही रखी ?

लीला : (स्मरण करते हुए) शायद वहाँ हो । (प्रस्थान)
(चन्दन अगूठी यहाँ-वहाँ खोजता है, सुधा का स्वर बाहर से)
मैं आ सकती हूँ ?

चन्दन : कौन है ?

सुधालता : अभी खद्दर बेचने आई थी।

चन्दन : (शान से) अच्छा आओ (सुधा का प्रवेश)

सुधालता : (चन्दन को देखकर) तुम्हारे साहब कहाँ हैं ? अभी नही आए ?

चन्दन : अभी बाहर से नही आए। तुम अपना गट्ठर उठा ले जा सकती हो। और देखो, जी, इस तरह क्यो चली आती हो ? तुम अपने नाम का कार्ड रखो। जब यहाँ आओ तो पहले उसको पेश करो। समझी ? मिलने का ढग ऐसा नही कि आए और कमरे मे घुस पडे। साहबो से मिलने का तरीका पहले मुझसे सीखो।

सुधालता : ठीक है। (खद्दर का गट्ठर उठाकर चलती है)

चन्दन : और सुनो जी, तुम हाथ मे सोने की अगूठी नही पहनती ?

सुधालता : सोने की अगूठी ? पूछने का मतलब ?

चन्दन : यो ही मैने कहा, सोने की अगूठी अच्छी होती है।

सुधालता : (दृढ दृष्टि से) अजीब आदमी है ! (प्रस्थान)

(चन्दन फिर अगूठी यहाँ-वहाँ खोजने लगता है। लीला का प्रवेश।)

लीला . बाथ-रूम मे भी अगूठी नही है। टेबुल के दराज मे भी नही है। कोई यहाँ आया तो नही था ?

चन्दन : वही खद्दर बेचनेवाली आई थी।

लीला : वह क्या ले गई होगी ! वह नही ले जा सकती। फिर तुम्हारे हुजूर भी तो थे।

चन्दन : नही हुजूर, कोई किसी का दिल क्या जाने, न जाने कब क्या··· ।

लीला : अभी वे नही आए ?

चन्दन : नही तो हुजूर, देखूं बाहर ? शायद आते हो। (बाहर जाता है)

लीला : (सोचते हुए) कहाँ जा सकती है अगूठी ? न मिलने पर वे नाराज जरूर होगे।

(फिर टेवुल का दराज देखती है। न मिलने पर आलमारी का दराज खोलती है। खद्दर का थान देखकर विस्मित होती है। निकालती है। सोचते हुए) अच्छा यह थान कहाँ से आया ? वे तो कहते थे कि मैने कोई कपडा खरीदा ही नही ? फिर यह कहाँ से आया ? कही उसी ने तो बेचने की गरज से यहाँ नही रख दिया ? पर वह यहाँ रख कैसे सकती है · ? कही उन्होने तो खद्दर के गट्ठर से यह निकालकर यहाँ नही रख दिया ? ओह, वे कैसे होते जा रहे है ! ···मैं उसे बुलाकर वापस कर दूँ······ । कही वे नाराज हो गये तो · । अच्छा, यह कैसी आवाज ? (बाहर चन्दन और सुधा मे बातचीत होती है, लीला सुनती है।)

सुधालता : देखो जी, मेरे गट्ठर मे एक थान कम है। कही अन्दर ही तो नही रह गया ?

चन्दन : (रूखे स्वर से) अन्दर कैसे रह जायगा ? जैसा गट्ठर बाँधकर रख गई थी, वैसा ही बँधा रखा था, कैसी बात करती हो तुम ?

(लीला खद्दर के थान को दराज मे बन्द कर दरवाजे के और पास आकर सुनने लगती है ।)

सुधालता : गट्ठर कुछ हलका जान पडा । मैने खोलकर देखा तो एक थान कम था ।

चन्दन : घर पर ही भूल आई होगी ! सुबह खूब कुहरा पड रहा था, जानती हो ? कुहरे-अन्धेरे मे कुछ दिखा न होगा । समझी होगी थान रख लिया । यहाँ तो गठरी किसी ने खोली भी नही ।

सुधालता : (सोचकर) मुमकिन हो, मैने ही भूल की हो । (ठहरकर) लेकिन मैने तो तुम्हारे हुजूर को वह थान दिखलाया था ?

लीला : (पुकार कर) चन्दन ?

चन्दन : (नेपथ्य से) हूजूर ।

लीला : क्या कोई वाहर है ?

चन्दन : जी हाँ, वही खद्दर वेचने वाली ! कहती है एक थान कम है ।

लीला . हाँ, जब वे वाहर जा रहे थे तब मैने एक थान पसन्द किया था । वह कीमत लिए बिना ही चली गई ?

चन्दन : मै बुलाऊँ ?

लीला : हाँ, बुलाओ । (सोचती है । सुधा का प्रवेश । वह हाथ जोड़

कर नमस्ते करती है। उत्तर देकर) बहन, माफ करना। तुम तो बिना जतलाए ही चली गई। मै भीतर थी। मैंने एक खद्दर का थान ले लिया था। कीमत लिए बिना ही तुम चली गईं।

सुधालता : मै समझी, गट्ठर वैसे ही बँधा हुआ रखा है। उठाकर चली गई।

लीला : मेरी अगूठी खो गई थी, उसे ही खोजने मे लगी हुई थी। इसी से वाहर नही आ सकी।

सुधालता : इसीलिए आपका नौकर मुझसे अगूठी पहनने को कह रहा था।

(चन्दन को तीव्र दृष्टि से देखती है)

लीला : वह नासमझ है। आप चिन्ता न करे। अच्छा हाँ, क्या कीमत है आपके थान की ?

सुधालता : मै वह थान जरा देखूँ ?

(लीला वह थान दराज मे से निकाल कर दिखलाती है। सुधा उसे देखकर)

सुधालता : सात रुपये सवा नौ आने।

लीला : (पर्स से नोट निकालते हुए) यह लीजिए, दस रुपये का नोट। वाकी दो रुपये पौने सात आने मुझे दे दीजिए।

सुधालता : (कृतज्ञता से) धन्यवाद, मेरे पास भी नोट ही है। रुपए नही है। अभी नोट भुनाकर दे देती हूँ।

(नोट लेकर जाती है। चन्दन उसे घूरता है)

चन्दन : हुजूर, इसी ने ली है आपकी अगूठी ।

लीला : बको मत, चन्दन । अच्छा देखो । (खद्दर का थान खोलते हुए) यह कैसा है, चन्दन ?

चन्दन · (उल्लास से) बहुत अच्छा है, हुजूर अगर इसका सूट बनवाएँ, तो जवाहरलाल की तरह दिखेंगे ।

लीला (हँसकर) अच्छा, जवाहरलाल सूट पहनते है ?

चन्दन हाँ, हुजूर। टैम्स मे वो तस्वीर निकली थी कि जवाहर लाल हवाई जहाज के पास खडे थे सूट पहन के !

लीला (हँसकर) पर तेरे हुजूर तो खद्दर पहनते ही नही ।

चन्दन . जरूर पहनेंगे, हुजूर ! अब आपने लिया है, तो वे जरूर पहनेंगे ।

लीला . देखो, (अगूठी की याद) पर चन्दन, मेरी अगूठी नही मिल रही है । तेरे हुजूर सुनेंगे तो नाराज होंगे ।

चन्दन (सोचते हुए) जब आप हाथ-मुँह धो रही थी तब तो नही गिर गई ? हुजूर, आपको दिखी न होगी । आज सुबह बडा कुहरा था, हुजूर !

लीला . (प्रस्थान) सब चीज के लिए तेरा कुहरा था । अच्छा देखूँ !

(प्रस्थान)

(चन्दन थोडी देर तक खडा सोचता है । फिर खद्दर के थान को हाथ से छूते हुए) वाह, कैसा बढिया है । हुजूर जब पहनेंगे तो (सोचकर) मेरे मुन्नू की माँ ने मेरे लिए कभी ऐसा कपड़ा नही खरीदा । (नवीन का प्रवेश ।

चन्दन सकपका जाता है। खद्दर को टेबुल पर देखकर नवीन विस्मय मिले क्रोध से घबराये हुए स्वर मे)

नवीन क्यो रे यह·· खद्दर का थान कहाँ से आया ? मैंने··· कौन यहाँ····· लाया ? उससे· मैंने कह दिया था अभी जरूरत नही, फिर और वह तो गठरी बाधकर चली गई थी—गई थी ? फिर मैने—

चन्दन . (घबराकर काँपते हुए) हुजूर, घर के हुजूर ने–हुजूर ने ·

(सुधा का प्रवेश)

सुधालता यह लीजिए, दो रुपये पौने सात आने। देर के लिए माफ कीजिए।

नवीन (आश्चर्य से) यह—यह कैसे दो रुपये पौने सात आने !

सुधालता आपने यह खद्दर का थान खरीदा था न ?

नवीन . मैने आ नैने··· ·मैंने तो आपसे कह दिया था कि आप फिर आइए, आप फिर· ·

सुधालता . हाँ, लेकिन आपकी श्रीमतीजी ने इसे खरीद ही लिया।

नवीन मुझसे विना पूछे ?

सुधालता . यह आप जाने।

नवीन . अच्छा ?

सुधालता आपकी श्रीमतीजी ने दस रुपये का नोट दिया था। मेरे पास वाकी पैसे नही थे मैंने कहा, अभी नोट भुनाकर लौटाती हूँ। वाकी पैसे लौटाने मे कुछ देर हुई तो क्षमा करें।

नवीन . खैर, क्षमा-वमा की जरूरत नही। पैसे भी उन्ही को ‘ ऐं अच्छा टेबुल पर रख दीजिए।

सुधालता (टेबुल पर पैसे रखते हुए) आपको यह कपडा खूब जँचेगा। मै आप ही के लिए तो लाई थी। और हाँ, एक मजेदार वात सुनिए। जव मैं लौटकर अपना गट्ठर ले जा रही थी, तो मुझे यह गट्ठर कुछ हलका मालूम हुआ। मैने समझा, मैं एक थान आपके यहाँ ही भूली जा रही हूँ ? मैं इस विषय मे आपके नौकर से वात कर ही रही थी कि आपकी श्रीमतीजी ने वुलाकर उस थान के लिए दस रुपये का नोट दिया।

नवीन (विह्वल होकर) अच्छा, क्या उन्होने थान पसन्द ?

सुधालता हाँ, पसन्द ही किया होगा, जब मैं अपना गज लाने के लिए वापस गई थी, इसी बीच उन्होने खद्दर की गठरी खोलकर शायद सब कपडे देखे थे और यही थान पसन्द किया था।

नवीन (सोचता है) हूँ।

सुवालता उसी समय उन वेचारी की अगूठी खो गई। वे भीतर अपनी अगूठी खोज रही थी और मैं विना उनसे मिले अपना गट्ठर लेकर बाहर चली आई। मुझे क्या पता कि मेरे सूने मे ही मेरे सामान की विक्री हो रही है। सचमुच ईश्वर बडा दयालु है ?

नवीन . (सोचता है)

सुधालता (प्रसन्नता और हर्षातिरेक से) और उनकी उदारता तो

देखिए कि जब मै बाहर चली आई, तो मुझे बुलवाकर उन्होने बिना बहस किए मुझे सारी कीमत दे दी।

नवीन · (श्रान्त होकर) अच्छी बात है। मै जरा थक गया हूँ। आराम चाहता हूँ। फिर कभी दर्शन दीजिए।

सुधालता अच्छी बात है। बन्देमातरम् (प्रस्थान)

(नवीन कुर्सी पर बेबसी से गिर पड़ता हुआ-सा बैठता है।)

चन्दन : (विचलित होकर) हुजूर, क्या सिर मे दर्द है ? बुलाऊँ उनको हुजूर—

नवीन · (सभल कर) नही रहने दो। यो ही जरा सिर मे चक्कर-सा आ गया था।

चन्दन . (शीघ्रता से) तो हुजूर, मै बुलाता हूँ उन्हे।

('चन्दन का 'हुजूर' कहते हुए प्रस्थान।)

(नवीन सोचता है) ओह ·····सम्मान की इतनी अधिक रक्षा ? इस ढग से· ···· ·! लीला····· ·

(लीला का चन्दन के साथ प्रवेश)

चन्दन . (लीला से) देखिए हुजूर !

(लीला आकर एकदम से नवीन के सिर पर हाथ रखती है, वह घबराई हुई है।)

लीला : (विह्वल होकर) क्यो, क्या हुआ ? क्या चक्कर आ गया ? चन्दन, जरा पानी लाना।

चन्दन : बहुत अच्छा, हुजूर (दौडते हुए प्रस्थान)

लीला : क्यों तबीयत आपकी कैसी है ?

नवीन . नही, यो ही कुछ भारीपन मालूम हो रहा था।

तुम्हारी अगूठी लेकर गया था नाप देने के लिए। वैसी ही दूसरी बनवाना चाहता था। इग्योरेंश के कुछ रुपए आए थे।

लीला (चिन्तित होकर) मुझे अगूठी की जरूरत नही है। आपको चक्कर तो नही आ रहा है इस समय ? (चन्दन पानी लेकर आता है) लीजिए पानी, मुँह धो डालिए।

नवीन (जैसे कुछ सोचते हुए) लीला !

लीला कहिए।

नवीन लीला, मै दुनियाँ बहुत बुरी समझता था, लेकिन—

लीला (चन्दन से) चन्दन, तुम बाहर जाओ।

(चन्दन का सोचते हुए धीरे-धीरे प्रस्थान)

नवीन लीला सोशलिज्म के विचार रखते हुए भी एक आदमी सच्चाई के साथ रह सकता है।

लीला हाँ।

नवीन वह लोगो के साथ ठीक बर्ताव रख सकता है। धनवानो से लड सकता है लेकिन सच्चाई के साथ, प्रेम के साथ। वह बुकसेलर की किताबे नही उड़ा सकता और खद्दर का थान ....

लीला · जाने दीजिए।

नवीन लेकिन लीला, मेरे स्वभाव ही मे ऐसी बात हो गई थी। मै देखता हूँ कि छुटपन की पड़ी हुई आदत बडे होने पर भी नही जाती।

लीला : आप सब बाते समझते है। आपसे क्या कहना ?

नवीन लीला तुम सचमुच देवी हो।

लीला : (लज्जित होकर) क्या कहते है आप ! ··· 'अच्छा यह वतलाइए कि आपकी तवीयत अब कैसी है ?

नवीन (स्वस्थ होकर) नही, अब अच्छा हूँ। यो ही कुछ ·····

लीला . तो कपडे वगैरह उतार डालिए कुछ हलकापन हो। कालर-टाई की वजह से तो और भी बेचैनी मालूम होती होगी। इसे उतार डालिए।

नवीन (आवेश मे) हाँ, इसे उतार डालता हूँ। (उतार कर चन्दन को पुकारते हैं) चन्दन ! (चन्दन का प्रवेश) जाओ। इस टाई को ठीक कर मदन खन्ना के यहाँ दे आओ। और कहो कि कल मेरे साथ यह भूल से चली आई थी।

चन्दन . हुजूर, अभी आप—

लीला (आश्चर्य से) अरे · ?

नवीन . (दृढ़ता से) अभी आप कुछ नही, इसी समय लेकर जाओ।

(चन्दन रेशमी टाई लेकर सिर झुकाए जाता है।)

नवीन . हाँ, जरा पानी लाओ, मुँह की कालिमा धो लूँ।

(पानी के गिलास की ओर हाथ बढाता है। लीला विस्मय और प्रसन्नता से नवीन की ओर देखती रह जाती है।)

(परदा गिरता है)

प्रश्न

१. लीला ने अपने पति के सम्मान की रक्षा किस प्रकार की ?

२. नवीन का यह समझना कि 'सोशलिज्म' के विचार रख कर एक आदमी सच्चाई के साथ नही रह सकता, कहाँ तक ठीक था ?

३. नवीन के चरित्र का विश्लेषण कीजिए।

४. सुधालता के चरित्र ने इस एकाकी को पूर्णता पर पहुँचाने मे क्या योग दिया ?





श्री उदयशकर भट्ट

दस हजार

पात्र

विसाखाराम—सीमा-प्रात का एक सेठ

सुन्दरलाल—विसाखाराम का लडका

राजो—विसाखाराम की लडकी

राजो की माँ—सेठ की पत्नी

मुनीन—विसाखाराम का मुनीम

नाटककार का परिचय

जीवन-परिचय

भट्ट जी का जन्म बुलन्दशहर, उत्तरप्रदेश मे हुआ किन्तु साहित्य-साधना अधिकतर लाहौर (पजाब) मे की। पहले आपकी प्रवृत्ति पूर्ण नाटक लिखने की ओर थी। बाद मे आपने नाटको का लिखना तो जारी रखा किन्तु साथ ही साथ एकांकी भी लिखने प्रारम्भ किये। फिर तो एकाकी-लेखको मे भी आप अग्रणी गिने जाने लगे। नाटक के अतिरिक्त कविता और उपन्यास भी आपने लिखे हैं। आप पात्रो के मनोभावो का चित्रण बड़ी स्पष्टता से करते हैं। पात्रानुकूल भाषा आपकी अपनी विशेषता है। भाव-नाट्य आपकी विशेष देन है। यद्यपि प्रायः आपके नाटको और एकाकियो के कथानक ऐतिहासिक और पौराणिक होते हैं तथापि आधुनिक युग की समस्याओ का सकेत लिए रहते हैं।

प्रस्तुत-एकाकी

प्रस्तुत एकांकी 'दस हजार' मे कजूस बनिये के मन मे होने वाले पुत्र-प्रेम और धन-प्रेम का द्वन्द्व बड़े मनोरंजक रूप मे दिखाया गया है।

कृतियाँ

तक्षशिला, राका, मानसी, विसर्जन, अमृत और विष, युगवाणी—कविता-संग्रह।

सगर-विजय, दाहर, अम्बा, कमला, विश्वामित्र आदि नाटक।

आदिम युग, समस्या का अन्त, पर्दे के पीछे आदि एकाकी-संग्रह।

सागर, लहरें और मनुष्य, नए मोड़—उपन्यास।

समय—शाम के पाँच बजे।

[सीमा-प्रान्त के एक नगर मे एक मकान। मकान मे एक बडा-सा कमरा, जिसमे दो दरवाजे हैं, एक सीढी के पास और दूसरा मकान के भीतरी भाग मे जाता है। गली की तरफ दो खिडकियाँ है। भीतर कमरे मे एक बडी खाट है, जिस पर मैला-सा विस्तर बिछा है। पूर्व की तरफ कोने मे एक चौकी है, उसके सामने आले मे ठाकुर जी का एक सिंहासन है। उसमे कुछ पीतल की मूर्तियाँ हैं। उन पर गेंदे के फूलो की माला चढी है। आले की कील मे एक रुद्राक्ष की माला है। हाथ की लिखी हुई छोटी-छोटी दो किताबें हैं। कमरे मे कुछ तसवीरे हैं—एक रामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न की, जिसमें राम के राज्याभिषेक का दृश्य है, हनुमान माला तोड रहे हैं। दूसरी तसवीर काली की है। कमरे मे एक मोढा रखा है और एक टूटी कुर्सी, जिसका बेत टूटा हुआ है। एक छोटी-सी मेज एक कोने मे रखी है। उस पर एक लोटा और उसके ऊपर एक गिलास रखा है। दो खूटियाँ गढी हुई हैं उनमे एक पर एक पगडी और दूसरी पर एक दुपट्टा और एक मैला-सा कोट है। खाट पर लाला विसाखाराम बेचैनी से लेटा हुआ है। उसकी आँखो मे बेचैनी है। चेहरा पिचका हुआ, रग गोरा, बाल बिखरे हुए। मालूम होता है, बडी चिन्ता मे है। हाथ मे एक चिट्ठी है, जिसे बार-बार उठाकर पढता है, और फिर सिरहाने रख देता है। फिर उठा लेता है, पढता है, और फिर रख देता है। उठकर बैठ जाता है और छत की कडियो की ओर ताकता है और धम्म से फिर खाट पर लेट जाता है।]

विसाखाराम . हाय, क्या जाना था, यह दिन भी देखना पडेगा ! हे राम जी ! उबारो महाराज ! बडी बिथा आ पडी है । कोई—कोई उपाय सूझै नही है । (आँख मीचकर ठाकुरजी को हाथ जोडने लगता है, फिर आँखें खोल कर पत्र हाथ मे लेकर पढने लगता है ।) क्या करूँ ? राजो, राजो री !

[भीतर के दरवाजे से चौदह साल की एक लडकी दौडती हुई आती है ।]

राजो हाँ चाच्चा जी ! क्या कहो हो ?

विसाखाराम अरी, क्या अभी मुनीमजी नही आये ? मरा जाऊँ हूँ । वडी मुसीवत है ।

राजो . भाई कब आवेंगे भला ? (एकदम पास आकर) बुला लो न भाई को । कुछ रुपयो की ही तो बात है । हाय, (आँखो मे आँसू भरकर) हे भगवान, वडे नामुराद है ये लोग ! चाच्चा जी, भेज दो रुपया, क्या देखो हो?

विसाखाराम (वैठकर) क्या देखूँ हूँ वेटी ! अपनी किस्मत को रोऊँ हूँ । रुपया भी कहाँ धरा है ? अभी अनाज भी तो खरीदना है । कल मुहम्मद वकस आने रुपए का सूद देकर दो हजार माँगने आया था, उसको भी तो देना ही है । दस हजार के सरकारी वौड खरीदने हैं, ऐसा मौका कब मिलेगा ? इतना सूद क्या छोडा जा सके है वेटी ? ओ. ! दस हजार देने पड़ेगे ! (एकदम खाट पर धडाम से लेट जाता है)

राजो · (दौडकर) चाच्चा जी, क्या हुआ तुम्हे ? भाभी, ओ भाभी ! देख तो चाच्चा को क्या हुआ ?

[राजो की मां 'अरी आई', कहती हुई आती है ।]

राजो की माँ · कह तो दिया, परेसान होने की क्या जरूरत है ? दे दो दस हजार । रुपए तो फिर भी मिलते रहेगे । लडका तो फिर · हा भगवान्, क्या कह रही हूँ ! हे रामजी ! (हाथ जोडकर आले मे रखे सिंहासन की तरफ देखने लगती है) यो ही करे है ! दया करो भगवान् !

विसाखाराम · मुनीमजी नही आये ? (आँख बन्द कर लेता है)

राजो आते ही होगे तुम्हारा कैसा जी है चाच्चा ?

राजो की माँ कहूँ तो हूँ, फिकर क्यो करो हो ? हे ईश्वर, मेरे लडके को लौटा दो । मेरा सब कुछ ले लो । मेरे प्यारे बच्चे को मुझे दे दो भगवान् ! (रोने लगती है ।)

राजो (माँ के गले से लिपटकर) रोवे क्यो है भाभी ? चाच्चा से कह के भाई को बुला ले न !

राजो की माँ · (आँसू पोछती हुई) कैसे बुलाऊँ बेटी, तेरे चाच्चा को तो रुपए की पडी है । ईश्वर ने एक ही लडका दिया····· हा भगवान् !

विसाखाराम : (आँखें खोलकर) राजो, मुनीमजी नही आये बेटी?

राजो अभी तो नही आये ।

विसाखाराम न मालूम मुनीम ने खाँड का सौदा किया या

नही ? इस वखत तो खाँड खरीदनी जरूरी है। फिर महँगी हो जायगी। कैसी मुसीबत है। न जाने इवराहीम से रुपये का तकाजा किया या नही ? आज चार साल होने आये, अभी तक सूद भी नही आया। मुकदमा लडना पडेगा। तव कही जाकर वह वेईमान रुपया देगा। (पत्र हाथ मे लेकर) पर इसको क्या करूँ ?

['राजो, राजो' नाम लेकर मुनीम आवाज लगाता हुआ जीने मे खट-खट चढता आता है]

विसाखाराम लो, मुनीमजी, आ गए। (एकदम उठकर बैठ जाता है) आओ मुनीजी, आज वडी देर लगाई।

[राजो और उसकी माँ दूसरे दरवाजे से घर मे चली जाती हैं।]

मुनीम जै रामजी की सेठजी ! देर हो गई। दिन-भर का हिसाव-किताव करना था। तेरह आने के हिसाव से खाँड के सौ वोरे खरीद लिए है। मुहम्मद वकस का आदमी आया था। मैंने कह दिया, सेठजी के आने पर फैसला होगा। सुना है, इवराहीम फरार हो गया है। रोकड मिलाते इतनी देर हो गई है। हाँ, पठानो की कोई चिट्ठी आई क्या ?

विसाखाराम : खाँड तो वारह आने चार पाई थी न, फिर तेरह आने क्यो खरीदी ? इवराहीम भाग गया ? यह तो वड़ी वुरी खवर है मुनीम जी, चार हजार नकद है। कैसे छोडे जा सके हैं ? चौधरी से नही

(डपटकर) अपने घर से निकालो तो मालूम हो। गाढ़े पसीने की कमाई है। दस हजार यो ही जायँगे? हे भगवान्! कगाल कर दिया।

[राजो और उसकी माँ एकदम कमरे मे आ जाती है।]

राजो की माँ यो ही जायँगे; सुना तुमने मुनीम जी? इनकी अकल पर तो पत्थर पड गए है। कुछ नही सोचते। बस, रुपया, रुपया! मेरा लडका ला दो मुनीम जी। हाय मेरा सुन्दर! हाय मेरा बच्चा रे!

[घूंघट किये जमीन पर बैठ जाती है। राजो दौडकर पिता से लिपट जाती है और निहोरे के ढग से उसे देखने लगती है।]

विसाखाराम : भला मुनीमजी! मै क्या कहूँ हूँ कि सुन्दर न आवे? मै तो खुद चाहूँ कि लडका किसी तरह आ जावे। मै क्या सुन्दर का बाप नही हूँ? तुम्ही बताओ। लडके के बिना तो घर सूना-सूना-सा लगे है। पर, दस हजार!

मुनीम : (सिर हिलाकर) हाँ, सो तो है ही। यह तो करना ही पडेगा।

राजो को माँ : आज चार दिन से मै इनका रूप देख रही हूँ। कहूँ हूँ रुपए के पीछे लडके को हाथ से न खोओ, रुपया तो हाथ का मैल है। दस हजार रुपया क्या बड़ी बात है। पर इन्हे तो न जाने क्या हो गया है। ब्याज और सूद से इनका विचार छूटे तब न! मुनीम जी, मैं तुम्हारे पैर पडूँ हूँ, मेरे सुन्दर को ला दो।

मुनीम : माताजी, घबराओ मत। सुन्दर को घर पर ही समझो।

राजो की माँ : घर पर कैसे समझूं मुनीमजी, घबराऊँ क्यो नही ? इनकी (पति की ओर इशारा करके) हालत देखकर तो मेरे जी मे ऐसा हो रहा है कि मै लडका खो बैठूंगी। कहते है, जो होना था, सो हो गया। और लडका हाय ! न मालूम इनसे यह कैसे ऐसा कहा गया। हे भगवान् !

राजो : मुनीमजी, मेरे भाई को जल्दी बुला दो। देखो, कई रातो से माँ सोई नही है। सारी-सारी रात रोती रही है। आंखे सूज गई है। मेरे भाई को जल्दी ले आओ, मुनीमजी ! (रोने लगती है)

राजो की माँ : मै कहूँ हूँ, मेरा गहना लेकर बेच दो और मेरे लडके को बचा लो।

मुनीम : घबराने की क्या बात है माताजी, सेठजी को भी तो आप से कम फिकर नही है।

बिसाखाराम : हाँ, सो तो है ही। मै भी कब सोया हूँ रात मे। दिन-रात चिन्ता लगी रहती है। सुन्दर मेरी आँखो के सामने झूमता रहे है। उसके बचपन की बाते याद आया करे है। इधर इब्राहीम रुपया देने मे ही नही आवे। क्या तुमने उसके सूद का हिसाब लगाया मुनीमजी, कितना बने है उसके ऊपर ? खाँड कहाँ रखवाई है, गोदाम मे न ? देखो, तालियाँ

अपने पास ही रखना। न हो तो मुझे दे जाओ।

मुनीम : सेठजी, सुन्दरलाल के लिए क्या हुक्म है ? रुपए का इन्तजाम करूँ ? वहुत थोडा वक्त है। (सेठ की ओर देखता है) पन्द्रह हजार तिजोरी में अभी रखकर आया हूँ।

बिसाखाराम : दस हजार ! न कम न थोड़ा। अरे और कोई इन्तजाम नही हो सके है मुनीमजी ? पुलिस को खबर क्यो न कर दो।

मुनीम : पुलिस भी क्या कर लेगी सेठजी, पुलिस भी तो डरे है। और उसे क्या मालूम नही है, पर वह करे तब तो ! सेठजी, मै तो आपको सलाह न दूंगा कि आप और इन्तजाम करे। नही तो आप लडके से हाथ धो वैठेंगे। न करे ईश्वर !

राजो की माँ : तुम किस ससै में पडे हो मुनीमजी ? मेरा गहना ले जाओ। (उतारकर सामने रख देती है) लो, मेरे लड़के को ला दो। चलो, मै भी तुम्हारे साथ चलूंगी।

बिसाखाराम : क्यो सब मेरे प्रान खाये जाओ हो ? गहना भी कौन घर का नही है ?

मुनीम : सेठजी ! देर हो रही है, हुक्म दो।

राजो की माँ : कह तो रही हूँ, यह ले जाओ। पठानो को दे देना।

विसाखाराम , क्या करूँ मै फिर ? मुनीमजी ! अलीवकस अपने गहने छुड़ा ले गया क्या ?

मुनीम : देर हो रही है सेठजी ! काबुली-फाटक तक पहुँचना है, क्या हुक्म है ?

[विसाखाराम दस हजार का ख्याल आते ही फिर वेसुध-सा होकर लेट जाता है ।]

मुनीम : क्या आज्ञा है सेठजी ? इसलिए जल्दी कर रहा हूँ कि दुकान से कुछ आदमी साथ ले लूंगा ।

राजो की माँ : अरे बोल तो दो ! न वोलो । मुनीमजी, (अकडकर) ले जाओ रुपया । मै क्या घर की, दुकान की, कोई भी नही हूँ ? जाओ देर न करो । हे भगवान् !

मुनीम : जो हुक्म (चला जाता है)

राजो : (माँ से) अब भाई आ जायगा माँ ?

माँ : हाँ वेटी, लेने गए है मुनीमजी । भगवान् का नाम ले, सुन्दर राजी-खुशी घर लौटे ।

विसाखाराम : (एकदम चेतन-सा होकर) मुनीमजी गए ?

राजो : हाँ गए, चाच्चाजी !

विसाखाराम : घर वरवाद कर डाला । क्या से क्या हो गया । लडका कपूत निकला । हाय; कैसे मैने पैसा कमाया । दस हजार ! हाय राम रे ! (फिर लेट जाता है) अरी राजो की माँ, मै मरा !

राजो की माँ : कहूँ कौन वडी रकम है । घर वच्चा आ जाय तो और हो जायँगे रुपए । परमात्मा ने सब कुछ तो···

हे भगवान् दया करो। तुम इतनी चिन्ता क्यों करो हो ?

बिसाखाराम : चिन्ता न करूँ ? (बैठकर) खून की कमाई है, खून की ! आज चालीस साल से लगातार दिन-रात एक करके रुपया कमाया है। (लेट जाता है)

राजो की माँ : कमाया है तो फायदा। न तीरथ, न जप-तप, न धर्म। कभी हरिद्वार भी न ले गए। मै तो तुम्हारा पैसा जानती ही नही। चार कोठियाँ है और हम इसी गली मे पडे सड रहे है। आज तीन-चार लाख रुपए के मालिक हो। एक पैसा भी कभी दान नही किया। ऐसा रुपया किस काम का ?

बिसाखाराम : (उठकर) आग लगा दे घर मे ! मुनीम ने आज की बिक्री का कोई हिसाब ही नही दिया। बेईमान हो गया है। हे रामजी, (लेट जाता है) दस हज्जार रुपया इस नालायक के""मुनीम कहाँ गया है राजो ?

राजो की माँ : और रुपया होता ही किसलिए है ? इसमें सुन्दर का क्या अपराध है भला ?

बिसाखाराम : मुनीम कहाँ गया ? शायद उगराही करने गया होगा। हे रामजी, दया करो !

[सुन्दरलाल और मुनीम का प्रवेश। राजो की माँ सुन्दरलाल को देखकर फूट-फूटकर रोने लगती है। राजो भाई से लिपट जाती है। लड़का दौड़कर पहले बिसाखाराम, फिर अपनी माँ के पैर छूता है।]

बिसाखाराम : (पुत्र को देखकर) आ गया रे ! बडी खुशी हुई।

राजो की माँ : आज बेटे को देखकर छाती ठंडी हुई। (उससे लिपट जाती है) मेरी आँखों के तारे !

राजो : मेरे भैया! (उसके गले से लिपट जाती है)

राजो की माँ : कैसा दुबला हो गया इतने ही दिन मे !

सुन्दरलाल : हाँ, माँ ! भगवान् इन राक्षसों के पंजे मे न डाले। देख, मार-मारकर तमाम देह सुजा दी है। (देह दिखाकर) हड्डी-हड्डी दुख रही है।

विसाखाराम : बडा अच्छा हुआ बेटा ! कैसे आए ? क्या वैसे ही उन्होने छोड दिया ? मुनीमजी ! आज उगराही मे क्या मिला ?

सुन्दरलाल : (मुनीमजी की ओर देखकर) दस हज़ार रुपए दिए थे न ?

मुनीम : (घबराकर) हाँ, सेठानीजी ने हुक्म दिया था।

विसाखाराम : क्या पूरे दस हज्जार !

[एकदम धडाम से तकिए पर गिर पडता है। सुन्दरलाल, मुनीम, राजो, विसाखाराम की ओर देखते है।]

राजो की माँ : (सुन्दरलाल को थपथपाती हुई) इन्हे नीद आ गई है बेटा, आओ, चले।

[पर्दा गिरता है]

प्रश्न

१. विसाखाराम के चरित्र पर दस पंक्तियाँ लिखिए।
२. क्या इस एकाकी को प्रहसन की श्रेणी मे रक्खा जा सकता है ?
३. मुनीमजी का एक शब्दचित्र २० पंक्तियो मे लिखिए।
४. राजो की माँ और विसाखाराम मे किसका चरित्र अधिक ऊँचा है ?



श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

तौलिये

पात्र

वसन्त—एक फर्म का मैनेजर

मधु—वसन्त की पत्नी

सुरो }
चिन्नी } —मधु की सहेलियां

मंगला—घर की नौकरानी

नाटककार का परिचय

जीवन-परिचय

श्री 'अश्क' का जन्म जालन्धर (पंजाब) मे हुआ। बी० ए०, एल-एल० बी० तक आपने शिक्षा पाई। पहले आप उर्दू मे लिखते रहे। बाद मे हिन्दी मे लिखने लगे और शीघ्र ही हिन्दी लेखकों मे अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। आप बहुमुखी प्रतिभा वाले कलाकार हैं। आपने उपन्यास, कहानी, नाटक, एकाकी, कविता, सभी कुछ लिखा है और सफलतापूर्वक लिखा है। रंगमच से आपका निकट सम्बन्ध रहा है और यही कारण है कि आपके नाटक पूर्ण सफलता के साथ अभिनीत हो चुके हैं। श्री जगदीशचन्द्र माथुर के शब्दो मे "श्री अश्क को नाटककार का लिवास पहनने की आवश्यकता नहीं है। उनकी स्वाभाविक सूझ और अभिव्यक्ति नाटकीयता से पगी है।"

आजकल आप इलाहाबाद मे पुस्तक-प्रकाशन का कार्य कर रहे हैं।

प्रस्तुत एकाकी

नाटककार 'अश्क' ने इस एकांकी मे आधुनिक शिष्टाचार की कृत्रिमता को दर्शाया है, जिसके रहते मधु खुलकर हँस नहीं सकती, बोल नहीं सकती, यहां तक कि अपने पति 'बसन्त' के जीवन मे भी उसने अपने इस व्यवहार से घुटन पैदा कर दी है। इस एकाकी से यह स्पष्ट हो जाता है कि पश्चिमी सभ्यता का अन्ध-अनुकरण हमारे लिए उपयुक्त नहीं। यह हमारी नैसर्गिक प्रवृत्तियो पर आघात कर जीवन को विषम बना दे रहा है।

कृतियां

तूफान से पहले, आदि मार्ग, कैद और उड़ान, छठा बेटा, चरवाहे, देवताओं की छाया मे, स्वर्ग की झलक, जय-पराजय आदि नाटक।

सितारो के खेल, गिरती दीवारें, चेतन, गर्म राख, हिज एक्सलेंसी, बड़ी-बड़ी आँखें—उपन्यास।

अंकुर, दो धारा, पिंजरा, चरवाहे, निशानियां, छींटें, बैंगन का पौधा, काले साहब—कहानी-संग्रह।

स्थान—नई दिल्ली

(पर्दा वसन्त के ड्राइंगरूम मे उठता है। ड्राइंगरूम न वहुत वडा है, न छोटा। वहुत सजा हुआ भी नही है। वसन्त अढाई सौ मासिक पाता है। पर नई दिल्ली के अढाई सौ ' लेकिन वह फर्म का मैनेजर है, इसलिए टेलीफोन लगा है, इसलिए कमरा भी सजा है—वाई दीवार के साथ एक मेज लगी है, उस पर कागज-पत्रो के अतिरिक्त टेलीफोन रखा है।

मेज के इधर एक दरवाजा है, जो अन्दर कमरे मे जाता है। मेज के उस ओर कोने मे एक अँगीठी है, किन्तु आग शायद इसमे नही जलती, क्योकि अँगीठी का कपडा अत्यन्त सुन्दर है, उस पर सजावट की चीजे भी रक्खी हुई है--वैसी ही जैसी मध्यवर्गीय घरो मे होती हैं—लेकिन वे विखरी नही हैं और करीने से लगी हुई है। दो पीतल के गुलदान दूसरी वस्तुओ के अतिरिक्त अँगीठी के दोनो कोनो पर रखे हुए हैं। इसी अँगीठी के कपडे की लम्बी झालर को छूता हुआ एक रेडियो सेट, नीचे एक छोटी-सी मेज पर रखा है, जिसके मेजपोश का डिजाइन अँगीठी के कपडे से मैच करता है और मधु की सुरुचि का पता देता है।

अँगीठी के ऊपर दीवार पर एक कैलेंडर लटक रहा है—जिससे कि मेज पर वैठे हुए व्यक्ति के ऐन सामने पडे। कैलेंडर को एक नजर देखने से मालूम होता है कि नवम्वर का महीना है।

अँगीठी के वरावर एक दरवाजा है, जो रसोई मे जाता है।

इस दरवाजे से जरा हटकर सामने की दीवार के साथ एक वेंत का कौच का सेट है। इसके आगे एक तिपाई है। सेट की गद्दियाँ सुन्दर

ग्रौर सुरुचिपूर्ण हैं और तिपाई का कवर अँगीठी के कपडे से मैच करता है।

सामने, दीवार के बाई ओर, कौच से जरा हटकर एक दरवाजा है, जो स्नानगृह को जाता है।

बाई दीवार के साथ शृङ्गार की मेज लगी है, जिससे वसन्त और मधु दोनो अपने टॉयलेट का काम लेते हैं। इसके ऊपर खूंटियो पर तौलिए टँगे हैं। मेज के दोनो ओर एक-दो कुर्सियां पडी हैं।

दाई दीवार मे इधर को एक दरवाजा है, जो बाहर जाता है।

पर्दा उठते समय हम वसन्त को शृङ्गार की मेज पर बैठे हजामत बनाते देखते हैं। वास्तव मे वह हजामत बना चुका है और तौलिये से मुँह पोछ रहा है। तभी रसोई के दरवाजे से स्वेटर बुनती हुई मधु प्रवेश करती है।)

मधु : यह फिर आपने मदन का तौलिया उठा लिया। मै कहती हूँ आप ·····

वसन्त : (मुँह पोछने पोछते रुककर) ओह! यह कम्बख्त तौलिये! मुझे ध्यान ही नही रहता! बात यह है (हँसता है) कि मदन के तौलिये छोटे है और हजामत

मधु : (चिढ़कर) और हजामत के तौलिये जैसे है। जी! जरा आँख खोलकर देखिए, हजामत के तौलिये कितने रंगीन है, बीसियो तो धारिया पडी हुई है उनमे और मदन के कितने सादे और ··

वसन्त : लेकिन रोएँदार तो·······

मधु : (व्यग्य से) दोनो है। जी! आँखें बन्द करके आदमी दोनो का अन्तर बता सकता है। मै कहती हूँ ···

वसन्त : (निरुत्तर होकर) वास्तव मे मेरा ध्यान दूसरी ओर था। लाओ, मुझे हजामत का तौलिया दे दो। कहाँ है ? मुझे दिखाई नही दिया।

मधु : (खूँटी पर टँगा हुआ तौलिया उठाकर) यह तो टँगा है सामने, फिर भी.....

वसन्त : मैने ऐनक उतार रखी है और ऐनक के बिना तुम जानती हो हमारी दुनिया

[खिसियानी हँसी हँसता है।]

मधु : जी, आपकी दुनिया ! जाने आप किस दुनिया मे रहते है। अब तो ऐनक नही। ऐनक हो तो कौन-सा आपको कुछ दिखाई देता है।

[मुँह फुला धम से कौच मे धँस जाती है और चुपचाप स्वेटर बुनने लगती है। वसन्त हजामत का सामान रखता है; फिर अचानक उसकी ओर देखकर]

वसन्त : यह तुमने फिर मुँह फुला लिया। नाराज हो गई हो?

मधु : (व्यंग्य से हँसकर) नही, मै नाराज नही।

वसन्त : तुम्हारा खयाल है कि मै इतना मूर्ख हूँ जो यह भी नही पहचान सकता ?

मधु : (उसी तरह हँसकर) मै कब कहती हूँ ?

वसन्त : (सामान वैसे ही छोडकर कुर्सी को उसकी ओर घुमाते हुए) मैने तुमसे कितनी बार कहा है कि अपने भावो को छिपा लेने की निपुणता तुम्हे प्राप्त नही। तुम्हारी उपेक्षा, तुम्हारे क्रोध, तुम्हारी समस्त भावनाएँ

तुम्हारी आकृति पर प्रतिबिंबित हो जाती है। तुम्हे मेरी आदते बुरी लगती है पर मैने तुम्हे अँधेरे मे नही रखा। अपने सम्बन्ध मे, अपने स्वभाव के सम्बन्ध मे, सब कुछ बता दिया था। मैने अपने सब पत्ते··

मधु : मेज पर रख दिए थे। (उसी तरह व्यंग्य से हँसकर) मै कब इनकार करती हूँ ?

वसन्त : तुम्हारी यह हँसी कितनी विषैली है। इसी तरह विप घोल-घोलकर तुमने अपने स्वास्थ्य का सत्यानाश कर लिया है।

मधु : (चुप रहती है)

वसन्त : मै तुम्हे किस प्रकार विश्वास दिलाऊँ कि मै स्वय सफाई का बडा भारी समर्थक हूँ।

मधु : (हँसती है) इसमे क्या सदेह है ?

वसन्त : और मुझे स्वय गदगी पसद नही।

मधु : (सिर्फ हँसती है)

वसन्त : पर मै तुम्हारी तरह 'अरिस्टोक्रेटिक'[1] (Aristocratic) वातावरण मे नही पला और मुझे नजाकते नही आती। हमारे घर मे सिर्फ एक तौलिया होता था और हम छहों भाई उसे काम में लाते थे।

मधु : आप मुझे 'अरिस्टोक्रेट' कहकर मेरा उपहास करते है। मै कब कहती हूँ, दस-दस तौलिये हो।

---

१. अरिस्टोक्रेटिक—कुलीन

वसन्त : दस और किस तरह होते हैं। नहाने का अलग, हजामत बनाने का अलग, हाथ-मुंह पोछने का अलग और फिर तुम्हारे और मदन के ...

मधु : (पहलू बदलकर) लेकिन मै पूछती हूँ इसमें दोष क्या है? जब हम खरीद सकते है तो क्यो न दस-दस तौलिया रखें। कल, परमात्मा न करे, हम इस योग्य न रहे, मै आपको दिखा दूं किस तरह गरीबी मे भी सफाई रखी जा सकती है–तौलिया न सही, खादी के अँगोछे सही, कोई पुरानी-धुरानी पर उजली चादर या धोती के टुकडे सही—कुछ भी रखा जा सकता है। लेकिन जिस तौलिया से किसी दूसरे ने बदन पोछा हो, उससे किस प्रकार कोई अपना शरीर पोछ सकता है ?

वसन्त : मै कहता हूँ, हम छः भाई एक ही तौलिया से बदन पोछते रहे।

मधु : लेकिन बीमारी ...

वसन्त : हममे किसी को कोई बीमारी नही हुई।

मधु : पर चर्म-रोग ...

वसन्त : तुम्हे और मदन को तो कोई बीमारी नही ... और फिर रोग इस तरह नही बढता। रोग बढता है कम-जोरी से। जब हमारे शरीर मे रोग से लोहा लेने वाले कीटाणु कम हो जाते है, तब ! चूहा सैंदनशाह की बात जानती हो ?

मधु : चूहा सैंदनशाह ...

वसन्त : शिकार करने के विचार से कुछ अफसर चूहा सैदनशाह गए। उनमे अमेरिका के राकफैलर ट्रस्ट के कुछ डाक्टर भी थे। लच के समय उन्हे पानी की आवश्यकता पडी। बैरे ने आकर बताया कि गाँव मे कोई कुआँ नही, लोग जोहड़ का पानी पीते है। डाक्टरो को विश्वास न आया। क्योकि जोहड़ का पानी मैला कीचट था। ऐसी कोई ही बीमारी होगी, जिसके कीडे उस पानी मे न हो, और चूहा सैदनशाह के जाट हृष्ट-पुष्ट, लम्ब-तडंगे····

मधु : तो क्या आप चाहते है, हम जोहड का पानी पीना शुरू कर दें ? (हँसती है)

वसन्त : (उठकर कमरे मे घूमता हुआ) तुम इस बात पर अपनी विषाक्त हँसी बिखेर सकती हो, (उसके सामने रुककर) लेकिन तुम्हें मालूम हो कि अमेरिका के डाक्टर वही रहे। एक जाट के रक्त का उन्होने विश्लेपण किया। मालूम हुआ कि उसमें रोग का मुकाबला करने वाले लाल कीटाणु रोग की मदद करने वाले कीटाणुओ से कही ज्यादा है। तब उन्होने वहां के लोगो की खुराक का निरीक्षण किया। पता चला कि वे अधिकतर दही और लस्सी का प्रयोग करते है और दही मे बहुत-सी बीमारियो के कीटाणुओ को मारने की शक्ति है। बीमारी का मुकाबला इन नजाकतो और नफासतो से नही होता, बल्कि शरीर में ऐसी शक्ति पैदा

करने से होता है, जो रोग के आक्रमण का प्रतिरोध कर सके। (फिर घूमने लगता है)

मधु · मैंने चूहा सैदनशाह की बात सुन ली। मैले तौलियो से शरीर मे लाल कीटाणु फैलें या श्वेत, मुझे इससे मतलब नही। मै तो इतना जानती हूँ कि बचपन ही से मुझे सफाई पसन्द है। मामाजी ···

वसन्त . (मेज के कोने का सहारा लेकर) तुमने फिर अपने मामा और मौसा की कथा छेडी। माना वे विलायत हो आये है, किन्तु इसका यह मतलब तो नही कि जो वे कहते है वह वेदवाक्य है। उस दिन तुम्हारे मौसा आये थे। उन्होने हाथ धोये तो मैंने कही भूल से तौलिया पेश कर दिया। (मधु के पास जाकर) उन्होने दाँत निपोर दिये। (नकल उतारते हुए) "मै किसी दूसरे के तौलिये से हाथ नही पोछता"—और वे अपने रूमाल से हाथ पोछने लगे। मै पूछता हूँ, अगर वे तौलिए से हाथ पोछ लेते तो उन्हे कौन-सी बीमारी चिमट जाती ?

मधु : अब यह तो

वसन्त और तुम्हारे मामा जी ···(वापस जाकर फिर मेज पर बैठ जाता है) तुम्हारे जाने के बाद एक दिन मै उनके यहाँ गया। रात वही रहा। दूसरे दिन मुझे सीधे दफ्तर आना था। कहने लगे—हजामत यही बना लो। मैंने कहा——मै एक दिन छोडकर हजामत बनाता हूँ, मुझे

कोई ऐसी जरूरत नही। जब उन्होंने अनुरोध किया तो मैंने कहा—"अच्छा, वनाये लेता हूँ।" तव वे एक निकृष्ट-सा रेजर ले आये और कहने लगे (नकल उतारते हुए)—"मै अपने रेजर से किसी दूसरे को हजामत नही वनाने देता, इसीलिए मैंने मेहमानो के लिए दूसरा रेजर रख छोडा है"—क्रोध के मारे मेरा रक्त खौल उठा, लेकिन अपने आपको रोककर मैंने केवल इतना कहा—"रहने दीजिये, मै घर जाकर शेव कर लूंगा।"

मधु . मामाजी

वसन्त : (अपनी वात जारी रखते हुए) इस पर शायद उन्हें महसूस हुआ कि मुझे उनकी वात वुरी लगी और उन्होंने मुझे अपने ही रेजर से हजामत वनाने पर विवश कर दिया। किन्तु मेरे हजामत वनाने के वाद मेरे ही सामने व्लेड उन्होंने लान में फेंक दिया और नौकर से कहा कि रेजर को 'स्टेरिलाइज़'[1] (Sterilize) कर लाए। (नकल उतारते हुए) मामाजी···

मधु ' मै कहती हूँ, आप उनके स्वभाव से परिचित नही, आपको वुरा लगा। स्वच्छता की भावना भी काव्य और कला ही की भांति····

वसन्त : (आवेग मे उसके पास आकर) क्यों काव्य और कला को अपनी इस घृणा में घसीटती हो। तुम्हारे ऐसे वातावरण मे पले हुए सब लोगों की नफासत में नफरत

---

१. स्टेरिलाइज़—दवाई के प्रयोग से कीटाणु-रहित करना।

की भावना काम करती है—शरीर से, गन्दगी से, जीवन से नफरत की !

मधु : (चुप रहती है)

वसन्त : और मुझे जीवन से घृणा नही। मुझे शरीर से भी घृणा नही और मै सच कह दूं, मुझे गंदगी से भी घृणा नही।

मधु : (हँसती है) तो फिर कूडो के ढेरों पर बैठिए !

[वसन्त फिर कुर्सी पर जा बैठता है, और कुर्सी को और समीप ले आता है।]

वसन्त : मुझे गदगी से घृणा नही, किन्तु मैं गन्दगी पसन्द नही करता—बडा नाजुक-सा फर्क है। यदि हमे जीवन का सामना करना है, तो रोज गन्दगी से दो-चार होना पड़ेगा, फिर इससे घृणा कैसी ? जिन गरीबो को तुम अपने बरामदे के फर्श पर भी पाँव न रखने दो, मैं उनके पास घंटो बैठ सकता हूँ।

मधु : (हँसती है।)

वसन्त : और मैंने ऐसे गन्दे इलाको मे जीवन के निरन्तर कई वर्ष बिताये हैं, जहाँ तुम्हारी स्वच्छता की सनक तुम्हे गुजरने तक न दे। समझी !

मधु : (वही बैठे और वैसे ही स्वेटर बुनते हुए) पर अब तो आप विपन्न नही। अब तो आप गन्दे इलाको मे नही रहते। विपन्नता की विवशता को मै समझ सकती हूँ किन्तु गन्देपन का स्वभाव मेरी समझ से दूर की वस्तु है।

वसन्त : तो तुम्हारे विचार मे मै स्वभाव से गन्दा हूँ ।

मधु : (उसी विषैली हँसी के साथ) मैं कब कहती हूँ ।

वसन्त : (खड़ा हो जाता है) ऐसे दिन मुझ पर आए हैं, जब एक बनियाइन पहने मुझे कई दिन गुजर जाते थे। उसे धोने तक का अवकाश न मिलता था और अब मै दिन में दो-दो बार बनियाइन बदल लेता हूँ। अगर यह गन्देपन की आदत है तो ·

मधु : (उसी हँसी के साथ) मै कब कहती हूँ ?

वसन्त : स्वच्छता बुरी नही, पर तुम तो हर चीज को सनक की हद तक पहुँचा देती हो, और सनक से मुझे चिढ है । (फिर कमरे मे घूमने लगता है) बनियाइनो और तौलियो की कैद मैने मान ली, किन्तु यदि मै गलती से बनियाइन न बदल पाऊँ, या गलत तौलिया ले लूँ तो इसका यह मतलब तो नही कि मेरे स्वभाव पर तुम्हे मुँह फुलाकर बैठ जाना या अपनी विषैली हँसी बिखेरनी चाहिए।

मधु : (चुप रहती है)

वसन्त : (रेडियो के पास से)तुमने अपने आपको इन मिथ्या बन्धनो मे इतना जकड लिया है कि मेरा जरा-सा खुलापन भी तुम्हे अखरता है। अपने सिद्धान्तों को तुमने सनक की हद तक पहुँचा दिया है। ऊषी और निम्मो ···

मधु : (बुनना छोड देती है) आपने फिर ऊषी और निम्मो की बात चलाई। ऊषी और निम्मो

वसन्त . (हँसते हुए) कल मिल गई बाजार मे। मैंने पूछा— निम्मो, आई नही तुम इतने दिनो से। कहने लगी—हमको चची से डर लगता है। (हसता है)

मधु : (उसी विषैली हँसी के साथ) मै उन्हे खा जाती हूँ।

वसन्त (तिपाई के पास से) खाओगी तो तुम क्या, पर वे बच्चियाँ है

मधु . बच्चियाँ! (व्यग्य से हँसती है)

वसन्त : (उसके व्यग्य को सुना-अनसुना करके तिपाई पर बैठते हुए) हँसना उनका स्वभाव है। वे हँसेगी तो बेबात की बात पर हँसेगी और तुम्हारा ऐटीकेट—बस, दबे-दबे घुटे-घुटे फिरो—ऊँह! (बेजारी से सिर हिलाकर उठता है) जो आदमी जी भर खा-पी नही सकता, हँस-हँसा नही सकता, वह जीवन मे कर ही क्या सकता है! चिन्ताओ और आपत्तियो के बन्धन ही क्या कम है जो जीवन को शिष्टाचार की बेडियो से जकड दिया जाय—यह न करो, वह न करो, ऐसे न बोलो, वैसे न बोलो—इन आदेशो का कही अन्त भी है ?

मधु : (चुप रहती है)

वसन्त . और फिर तुम्हारे इस शिष्टाचार मे वह स्निग्धता कहाँ है ? तुम्हारे आने से पहले मै, देव और नारायण एक ही लिहाफ मे बैठ जाते थे। जरा कल्पना तो

करो—सर्दियो की सुबह या शाम, एक ही चारपाई पर, एक ही रजाई घुटनो पर ओढे, चार-पाँच मित्र बैठे है। गप्पे चल रही है। सुख-दुख की बाते हो रही है। वही चाय आ जाती है। साथ-साथ बाते होती है, साथ-साथ चुस्कियाँ लगती है—इस कल्पना मे कितना आनन्द है, कितनी स्निग्धता है। अब मित्र आते है। अलग-अलग कुर्सियो पर बैठ जाते है। एक दूसरे पर बोझ मालूम होता है। (जोश से) चिडिया तक तो फटकने नही देती तुम बिस्तर के पास। मै तो इस तकल्लुफ मे घुटा जाता हूँ।

[जाकर कुर्सी पर बैठ जाता है और हजामत का सामान ठीक से रखने लगता है।]

मधु . मै तकल्लुफ स्वय पसन्द नही करती। पर जब दूसरो को सफाई का कुछ भी ख्याल न हो तो विवश हो इससे काम लेना पडता है। आप बताइए—कितने लोग है, जिन्हे सफाई की आदत है ? कितने है जो हमारी तरह पाँव धोकर रजाई मे बैठते है।

वसन्त : (वही से) पाँव धोने की मुसीबत रजाई मे बैठने का लुत्फ ही किरकिरा कर देती है।

मधु : कुत्ता भी बैठता है तो दुम हिलाकर बैठता है। मनुष्य स्वभाव ही से स्वच्छता का प्रेमी है। मै गदे लोगों से घृणा करती हूँ। (फिर स्वेटर बुनने लगती है)

वसन्त . (मुडकर) घृणा—यही तो मै कहता हूँ। तुम्हे मुझसे

घृणा है, मेरे स्वभाव से घृणा है, तुम्हारा वातावरण मेरे वातावरण से घृणा करता है ।

मधु : (उसी विषैली हँसी के साथ) यह आप कह सकते है ।

वसन्त · तुम्हे मेरी हर एक बात से घृणा है—मेरे खाने-पीने से, उठने-बैठने से, हँसने-बोलने से—मै जब हँसता हूँ, सीना फुलाकर हँसता हूँ और इसीलिए ऊषी और निम्मो ···

मधु : (स्वेटर को फेककर) आपने फिर ऊषी और निम्मो की कथा छेडी । मुझे हँसना बुरा नही लगता । पर समय-कुसमय का भी ध्यान होना चाहिए । उस दिन पार्टी मे आते ही ऊपी ने मेरे कान पर चुटकी ले ली और निम्मो ने मेरी आँखे बन्द कर ली । कोई समय था, उस तरह हँसी-मजाक का ? मुझे हँसी-मजाक से घृणा नही, अशिष्टता से घृणा है ।

वसन्त ऊपी ·· ·

मधु परले सिरे की अशिप्ट और असभ्य लडकी है । मदन की वर्षगाँठ के दिन वे सब आये थे । निम्मो इतनी चचल है, पर वह तो बैठ गई एक ओर, और यह नवाबजादी सैडल समेत आ बैठी मेरे सामने टाँगे पसारे और उसके गदे सैडल—मेरी साडी के बिलकुल समीप आ गये । आप इस अशिष्टता को शौक से पसन्द करे, मै तो इसे कदापि पसन्द नही कर सकती । जिसे

बैठने-उठने, बोलने का सलीका नही, वह मनुष्य क्या, पशु है।

वसन्त · (गरजकर) पशु ! तो तुम मुझे पशु समझती हो ? तुम मनुष्य की प्राकृतिक भावनाओ को बाँधकर रखना चाहती हो कठिन सिद्धान्तो की बेडियो मे, ताकि उसकी रूह ही मर जाये। मुझे यह सब पसन्द नही और इसलिए तुम मुझसे घृणा करती हो। तुम्हारी इस विषाक्त हँसी मे, मै जानता हूँ, कितनी घृणा छिपी है और मुझे डर है कि किसी दिन मै सचमुच पशु न बन जाऊँ। अभी मेरा जी चाहा था कि इस जलील से तौलिये को उठाकर बाहर फेक दूँ और और मेरा जी चाहा करता है कि मै तुम्हारी इस हँसी का गला घोट दूं। घृणा—तुम मेरी हर बात से घृणा करती हो—मुझे पशु समझती हो !

मधु (स्वेटर उठाते हुए भरे गले से) आप नाहक हर बात को अपनी ओर ले जाते है। अपनी कल्पना से मेरे दिल मे वे बाते देखते है, जो मै स्वप्न मे भी नही सोचती। मुझे आपसे घृणा है या नही, इसे मै ही जानती हूँ। पर आपको मुझसे जरूर घृणा है। आपने मुझसे शादी कर ली, मै जानती हूँ। क्यो कर ली, यह भी जानती हूँ। लेकिन विवाह के लिए आपका तैयार हो जाना, यह नही बताता कि आपको मुझसे नफरत नही। इसका क्रोध चाहे अब आप मेरी सफाई पर

निकाले, चाहे मेरी पोशाक या मेरे स्वभाव पर !

वसन्त तुम··· ··· ·

मधु मेरा ख्याल था, मै आपको सुख पहुँचा सकूंगी । आपके अव्यवस्थित जीवन को व्यवस्था सिखा दूंगी, किन्तू मै देखती हूँ कि मेरे समस्त प्रयास विफल ह आपका इस गदगी, इस अव्यवस्था मे सुख मिलता है । आपको मेरी व्यवस्था, मेरी सफाई बुरी लगती है । मै आपकी दुनिया मे न रहूँगी । मै आज ही चली जाऊँगी ।

[उठ खडी होती है—टेलीफोन की घटी बजती है । वसन्त जल्दी से चोगा उठाता है ।]

वसन्त हैलो, हैलो, जी, जी !

मधु (नौकरानी को आवाज देते हुए) मगला !

मगला (स्नानगृह की ओर के दरवाजे से आती है) जी, बीबीजी !

मधु मेरा विस्तर तैयार कर और मेरा ट्रक इस कमरे मे ले आ ।

मगला बीबी जी आप ·

मधु मै जो कहती हूँ, उठा ला ।

[मगला चली जाती है । वसन्त "जी, जी वहुत अच्छा !" कहते हुए चोगा रख देता है और हँसता हुआ आता है ।]

वसन्त मै कहता हूँ तुम अपना सामान बाँधने की सोच रही हो, पहले मेरा सामान तो ठीक कर दो । मुझे पहली

गाडी से बनारस जाना है। अभी साहब ने आदेश दिया है। अपना सामान बाद मे बाँधना (हँसता है)

[पर्दा गिरता है]

[कुछ क्षण वाद पर्दा फिर उठता है। कमरा वही है। सामान भी वही है। सिर्फ इतना अन्तर है कि जहाँ मेज थी, वहाँ एक पलग बिछा है और टेलीफोन उसके सिरहाने एक तिपाई पर रखा है। मेज ड्रेसिंग टेबुल की जगह चली गई है और शृंगार की मेज अपनी कुर्सी के साथ दाये कोने को सरक गई है।

पलँग पर मधु लिहाफ घुटनो पर लिए दीवार के सहारे अन्यमनस्क-सी आधी लेटी है।

कुछ क्षण वाद वह कैलेंडर की ओर देखती है। उसकी दृष्टि का अनुसरण करते ही मालूम होता हे कि जनवरी का महीना है और नया साल चढ गया हे, जिसका मतलव यह है कि मधु को हम दो महीने वाद देख रहे है।

वाहर का दरवाजा खुला है और तीखी हवा अन्दर आ रही है लिहाफ को कधो तक खीचते हुए मधु नौकरानी को आवाज देती है।—"मंगला, मगला!"

लेकिन आवाज इतनी हलकी है कि ,शायद मगला तक नही जाती। मधु रजाई लेकर लेट-सी जाती है। कुछ क्षण वाद मगला स्वय ही आती है।]

मंगला . वीवोजी, आप उदास क्यो है ?

मधु · (लेटे-लेटे जरा सिर झुकाकर) मगला! यह किवाड वन्द कर दो, वर्फ-सी हवा अन्दर आ रही है।

मगला : (किवाड वन्द करते हुए) मेरी वात का उत्तर नही दिया आपने वीवीजी।

मधु यो ही कुछ तबीयत उदास है मगला !

मगला : कोई पत्र आया बाबूजी का ?

मधु . आया था । शायद आजकल मे आ जाये ।

मंगला . तो फिर ...

मधु . (विषाद से हँसकर) तबीयत कुछ भारी-भारी-सी है । शायद सर्दी के कारण

[दरवाजे पर दस्तक होती है]

मधु : (जरा उठकर) कौन ?

सुरो · (बाहर से) दरवाजा तो खोलो ।

मधु . (बैठ कर) मगला, जरा किवाड खोलना ।

[मगला दरवाजा खोलती है, सुरो और चिन्ती, आती हैं ।]

मधु (रजाई परे करके) अरे सुरो, चिन्ती, तुम यहाँ कैसे ?

सुरो . आज ही सवेरे यहाँ उतरी है ।

चिन्ती : माताजी प्रयाग जा रही थी । सरिता बहन का खयाल था कि दिल्ली भी देखते चले ।

मधु . ठहरी कहाँ हो ?

चिन्ती . कनाट प्लेस मे मलिक चचाजी के यहाँ । देर से उनका अनुरोध था कि दिल्ली आये तो....

मधु : और मुझे पत्र नही लिखा । इतने दिनो से मै कह रही थी, दिल्ली आओ तो ...

सुरो सबसे पहले तुम्ही से मिलने आई है । माताजी कहती थी, कुतुबमीनार

चिन्ती . मैने कहा, कुतुबमीनार एक तरफ और मधु बहन एक तरफ ··

[मधु कहकहा लगाती हैं]

सुरो · और फिर दो घटे से मारी-मारी फिर रही है तुम्हारी तलाश मे ।

मधु · लेकिन पता तो मेरा ··

चिन्ती : सुरो बहन भूल गई । इन्होने तांगे वाले को भैरो के मन्दिर चलने के लिए कह दिया ।

मधु · (आश्चर्य से) भैरो के मन्दिर····

चिन्ती और तांगे वाला ले गया सब्जी मडी, कही तीस हजारी के गिरजे के पास ।

मधु : गिरजे के पास··· (जोर से कहकहा लगाती है)

चिन्ती (अपनी बात जारी रखते हुए) तब इन्हे खयाल आया कि मन्दिर तो हनुमान का है । फिर नई दिल्ली वापस आईं ।

[मधु फिर जोर से हँसती है]

सुरो और तब पता चला कि हम लोग तो यो ही परेशान होते रहे । घर तो तुम्हारा पास ही था ।

मधु : तुम लोग भी, मै कहती हूँ····

[जोर मे हँस पडती है]

सुरो · यह इतना हंसना तुम कहाँ से सीख गईं । तुम तो थी जन्म की सिडी

चिन्ती भाई साहब ने सिखा दिया इतने जोर के कहकहे लगाना ? कहाँ है वे ?

मधु · बनारस गये है, दो महीने से । वहाँ की फर्म का मैनेजर बीमार पड गया था । शायद आज-कल मे आ जायँ ।

चिन्ती . अच्छे तो है ?

मधु : अच्छे है । मौज में है । लेकिन तुम खडी क्यो हो ? इधर आ जाओ बिस्तर पर । (नौकरानी को आवाज देती है) मगला, मगला !

[सुरो और चिन्ती कुर्सियो पर बैठने लगती है]

मधु · अरे, कुर्सियाँ छोडो । बस, चली आओ इधर । पलंग पर बैठते है लिहाफ लेकर ·

सुरो लेकिन मेरे पाँव (हँसकर) और मै धो नही सकती इन्हे ।

मधु . अरे क्या हुआ है तुम्हारे पाँवों को । जुराबें तो पहन रखी है तुमने ?

चिन्ती . पर तुम्हारा बिस्तर ?

मधु . कुछ नही होता बिस्तर को । मेरे बिस्तर का खयाल छोडो । बस, चली आओ इधर । यह किवाड़ बन्द कर दो । बर्फ सी हवा अन्दर आ रही है ।

[मगला आती है ।]

मंगला . आपने आवाज दी थी बीबीजी ।

मधु · मगला, चाय बनाकर लाओ !

[चिन्ती किवाड़ बन्द कर देती है । तीनो घुटनो पर लिहाफ लेकर आराम से बिस्तर पर बैठ जाती हैं ।]

सुरो · पुष्पा की शादी हो रही है, अगले महीने ।

मधु (चौंककर, खुशी से) लेफ्टिनेंट वीरेन्द्र के साथ ?

चिन्ती (हँसकर) सब तुम्हारे जैसी नही। वह प्रेम करती रहेगी वीरेन्द्र से जीवन भर, पर शादी तो उसकी प्रोफेसर मुशीराम ही के साथ होगी।

मधु ' पर मुशीराम…

सुरो : खडे का खालसा है भई। लेफ्टिनेंट साहब तो आते है कभी-कभी वर्ष मे एक-दो वार और प्रोफेसर साहब सिर पर सवार रहते है आठो पहर बुरे साये की तरह।

चिन्ती वह लम्म-सलम्मा लमढीग-सा आदमी। जोर की हवा चले तो उडता चला जाये। मै तो सोचती हूँ कि उसे पुष्पा जैसी मोटी-मुटल्लो से प्रेम भी हुआ तो कैसे ?

मधु . और मै इस बात पर हैरान हूं कि उसे पुष्पा पसन्द ही कैसे करती है। मै तो उसे पाँच मिनट के लिए भी सहन न कर सकूं। चेहरे पर तो उसके नहूसत बर-सतो रहती है और मालूम होता है जैसे ··

चिन्ती वर्षों स्नानगृह का मुँह न देखा हो।

सुरो ' सहन तो उसे करना ही पड़ता है। उसके पिता प्रोफेसर मुशीराम पर वड़े प्रसन्न है। उन्होने प्रोफेसर साहव को पढाया-लिखाया और अपने कालेज मे लगाया। वीरेन्द्र तो चार वर्ष बी० ए० मे रहे और प्रोफेसर मुशीराम ने रिकार्ड तोडा था।

[मंगला चाय की ट्रे लाती है]

मगला कहाँ लगाऊं चाय बीबीजी ?

मधु वहाँ मेज पर रख दो और एक-एक प्याला बनाकर हमे दो । यह तिपाई सरकाकर इस पर बिस्कुट रख दो ।

सुरो (आश्चर्य से) मधु !

मधु अरे उठकर कहाँ जाओगी । यही बैठी रहो । इस गर्म बिस्तर से उठकर डाइनिंग टेबुल पर जाने मे आ चुका चाय का मजा ''

चिन्ती . (उठने का प्रयास करते हुए हलके से क्रोध से) मधु

मधु : हटाओ भी । अब बैठी रहो यही ।

चिन्ती (व्यग्य से) तो विवाह के बाद रानी मधुमालती ने अपने सब सिद्धान्त बदल डाले है । अब डाईनिंग टेबुल के बदले बिस्तर पर ही चाय पीती है और बिस्तर पर ही खाना भी नोश फरमाती है ।

सुरो कहाँ तो यह कि पानी का गिलास भी पीना हो तो डाइनिग रूम की ओर भागती और कहाँ यह कि…

मधु अरे क्या रखा है इस तकल्लुफ मे । सच कहो, इस समय किसका जी चाहता है कि इस नर्म-गर्म बिस्तर से उठकर डाइनिग टेबुल पर जाये । लो, बिस्कुट और चाय का प्याला उठाओ ! ठडी हो रही है ।

[सब चाय के प्याले उठा लेती हैं और चाय पीते-पीते बातें करती है ।]

सुरो मैं पूछती हूँ—अगर चाय बिस्तर पर गिर जाये ?

मधु . तो क्या हुआ । चादर धुलवाई जा सकती है । और

फिर किसी दिन सहसा पेश आने वाली दुर्घटना के भय से कोई अपने रोज के सुख-आराम को तो नही छोड देता ।

सुरो सुख-आराम ! (व्यग्य से हँसती है) तुम बिस्तर पर चाय पीने को बहुत बडा सुख समझती हो (फिर हँसती है)

चिन्ती · और फिर सभ्यता, सस्कृति

मधु : मानव की आधारभूत भावनाओ पर नित्य नये दिन-दिन चढते चले जाने वाले पर्दो का नाम ही तो सस्कृति है । सोसाइटी के एक वर्ग के लिए दूसरा वर्ग सदैव असभ्य और असस्कृत रहेगा । फिर कहाँ तक आदमी सभ्यता और सस्कृति के पीछे भागे !

सुरो यह तुम क्या कह रही हो ? क्या तुम चाहती हो कि इतना कुछ सीख-समझकर मनुष्य फिर पहले की भाँति वर्बर वन जाये ?

मधु नही, वर्बर वनने की क्या जरूरत है ? मनुष्य सीमाओ को छूता हुआ क्यो चले ? मध्य का मार्ग क्यो न अपनाये, न इतना खुले कि बर्बर दिखाई दे न इतना वँधे कि सनकी । महात्मा वुद्ध ने कहा था ...

सुरो : (हँसकर) महात्मा वुद्ध ! तुम्हे हो क्या गया है, सदियो पुराने गले-सडे विचारो को तुम आज की सभ्यता पर लादना चाहती हो !

चिन्ती · मनुष्य हर घड़ी, हर पल, प्रगति के पथ पर अग्रसर

है। आज के सिद्धान्त कल काम न देंगे और कल के परसों। बर्नार्ड शॉ ·

मधु : (व्यग्य से हँसकर) बर्नार्ड शॉ—हटाओ, क्या बेमजा बहस ले बैठी हो। मगला, चाय का एक-एक कप और बनाओ।

चिन्ती बस भई, अब तो हम चलेंगे। इतनी देर हो गई हमे यहाँ आये। मगला, हाथ धुला दो हमारे।

मधु : अरे भई, एक-एक प्याला तो और लो।

सुरो . नही मधु, अब चलेगे। वहाँ सब लोग परेशान हो रहे होगे। हमने कहा था, हम केवल मधु का घर देखने जा रहे है। एक-आध घण्टे मे लौट आयेगे और यहाँ आते ही आते दो घण्टे लग गये।

चिन्ती · स्नानगृह किधर है ? हम वही हाथ धो आते है।

मधु · अरे क्या धोओगी इस सर्दी मे हाथ ?

सुरो : नही भई, हाथ तो हम जरूर धोयेगे। चिप-चिप कर रहे है।

मधु : तो मरो ! (मगला से) मगला, इनके हाथ धुलवा दो।

सुरो : बाथ-रूम

मधु . अरे बाथ-रूम मे जाकर क्या करोगी। इधर बरामदे ही में धो लो।

[किवाड खोलकर सुरो और चिन्ती हाथ धोती हैं। मधु चुप-चाप अपने प्याले की शेष चाय पीती है।]

सुरो : (गीले हाथ लिए वापस आकर) तौलिया कहाँ है ?

मधु · तौलिया नही दे गई मगला ? अच्छा, वह ले लो जो खूँटी पर टँगा है ?

सुरो · (क्रोध से) मधु, तुम भली-भाँति जानती हो · ·

मधु . मगला, इन्हे अन्दर से एक धुला हुआ तौलिया ला दो।

[चिन्ती भी गीले हाथ लिए आ जाती है। मगला तौलिया ले आती है और दोनो हाथ पोछती है।]

मधु · मैं कहती थी, अभी कुछ देर बैठती !

चिन्ती . नही, अब कल आने का प्रयास करेगी।

[हाथ पोछकर तौलिया कुर्सी की पीठ पर रख देती है।]

मधु प्रयास नही। जरूर आना। भूलना नही। और खाना भी यही खाना ।

सुरो हाँ, हाँ, अवश्य आयेगी।

[मधु उठने का प्रयास करती है]

सुरो . अब उठने का तकल्लुफ न करो। बैठी रहो अपने गर्म लिहाफ मे। दरवाजा हम बन्द किये जाते है। बर्फ-सी हवा अन्दर आ रही है।

[हँसती हुई चली जाती है, दरवाजा बन्द किये जाती हैं]

मधु : मुझे एक प्याला और बना दो मगला।

मगला (प्याला बना कर देते हुए) ये कौन थी बीबीजी ?

मधु : मेरी सहेलियाँ थी। कालेज मे हम साथ-साथ पढते थे और होस्टल मे भी साथ-साथ ही रहते थे।

[कुछ क्षण मधु चुपचाप चाय पीती है, फिर]

मधु मंगला !

मंगला : जी, बीबीजी !

मधु . मगला, जरा मेरी ओर देखकर बता तो मंगला, क्या मैं सचमुच बदल गई हूँ !

मगला · (चुप रहती है)

मधु : (जैसे अपने आप से) मेरी सहेलियाँ कहती है, मै बदल गई हूँ। पडौसिने भी यही कहती है। मेरी ओर जरा देखकर बता तो मगला, क्या मै वास्तव मे बदल सकी हूँ ?

मगला मैं तो आठो पहर आपके पास रहती हूँ बीबीजी, मै क्या जानूं ?

मधु (अपनी बात जारी रखते हुए) मेरी आँखो मे देखकर बता मंगला, क्या ये बदल सकी है। इनमे घृणा की झलक तो नही ?

मगला . (आश्चर्य से) घृणा

मधु मेरे व्यवहार मे तकल्लुफ और बनावट तो नही ?

मगला : (उस आश्चर्य से) बनावट, तकल्लुफ

मधु तकल्लुफ, बनावट, नफरत—तीनो को मै अपने दिल से निकाल देना चाहती हूं। (जैसे अपने आप से) दो महीने पहले, वे इसी बात पर मुझसे लड कर चले गये थे।

मगला . क्या कह रही है बीबीजी आप। बाबूजी तो ·

मधु : (शून्य मे देखते हुए) उनका क्रोध अभी तक नही उतरा।

इन दो महीनो मे उन्होने मुझे एक पत्र भी नही लिखा।

मगला . एक पत्र भी नही लिखा, लेकिन ..

मधु : (व्यग्य से) "मै कुशल से हूँ, अपनी कुशलता का पता देना!" या "मैनेजर बीमार है, ज्यो ही स्वस्थ हुआ, चला आऊँगा।" इन्हे तुम पत्र लिखना कहती होगी। वे मुझसे नाराज है। उनका खयाल है कि मै उनसे घृणा करती हूँ।

मगला : (कुछ भी समझने मे असफल होते हुए)—घृणा, घृणा!

मधु . यदि मै बचपन ही से ऐसे वातावरण मे पली हूँ, जहाँ सफाई और सलीके का बेहद खयाल रखा जाता है तो इसमे मेरा क्या दोष है! (लगभग भरे हुए गले से) वे सफाई और व्यवस्था की मेरी इच्छा को घृणा बताते है। मै बहुतेरा यत्न करती हूँ कि इस सब सफाई-वफाई को छोड दूं। इन तकल्लुफात को तिलाजलि दे दूं। अपने इस प्रयास मे कभी-कभी मुझे अपने आपसे घृणा होने लगती है। (लम्बी साँस भरकर) बचपन से जो सस्कार मैने पाये है, उनसे मुक्ति पाना मेरे लिए उतना आसान नही। (अचानक दृढता से) पर नही, मै इन सब वहमो को छोड दूंगी। पुरानी आदतो से छुटकारा पा लूंगी। वे समझते है, मै उनसे नफरत करती हूँ।

मगला आप क्या कह रही है बीबी जी?

मधु · वे समझते है—मै उनसे, उनके स्वभाव से, उनके वाता-

वरण से, उनकी हर-एक बात से घृणा करती हूँ। (सिसकने लगती है।) मैने इन दो महीनो मे अपने आपको बदल डाला है। अपने आपको बिलकुल बदल डाला है।

[दरवाजा अचानक खुलता है और वसन्त प्रवेश करता है।]

वसन्त : हेल-लो मधु–क्या हाल-चाल है जनाब के! (मगला से) मगला, ताँगे से सामान उतरवाओ। और (जेब से पैसे निकालते हुए) और यह लो, डेढ रुपया। ताँगे वाले को दे दो।

[मगला पैसे लेकर चली जाती है]

वसन्त : (फिर मधु के पास आते हुए) कहो भाई, क्या हाल-चाल है! यह, यह सूरत कैसी रोनी बना रखी है। जी कुछ खराब है क्या ?

मधु : (जो इस बीच मे पलँग से उतर आई है—हँसने का प्रयास करते हुए) सूखा जाडा पड रहा है। जुकाम है मुझे तीन चार दिन से।

वसन्त : मैने तुम्हे कितनी बार कहा है कि अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखा करो। सेहत—सेहत—सेहत—दुनिया में जो कुछ है सेहत है। जीवन मे तुम्हारी यह सफाई और सुघडता, ये नजाकते इतना काम न देगी, जितना सेहत। यदि यही ठीक नही रहती तो ये सब किस काम की, और अगर यह ठीक है तो फिर इनकी कोई जरूरत नही। (अपने कथन की बारीकी का स्वय ही आनन्द लेता

है और फिर जैसे उसने पहली बार कमरे को अच्छी तरह देखा हो) अरे, यह कायापलट कैसी ? यह पलँग ड्राइगरूम मे कैसे आ गया ? और यह ट्रे और प्याले ·····।

मधु मैंने पलंग इधर ही बिछा दिया है कि आप और आपके मित्रो को जरा भी कष्ट न हो । मजे से लिहाफ लेकर बैठिए । टेलीफोन आपके सिरहाने रहेगा ।

वसन्त (उल्लास से) वाह ! मैं कहता हूं तुम ·तो, तुम ·· तो ·बेहद अच्छी हो ।

मधु . मैं स्वय अपनी सहेलियो के साथ इसी लिहाफ में बैठी रही हूँ ।

वसन्त (आश्चर्य-मिश्रित उल्लास से) सच !

मधु (उसकी ओर प्रशसा की इच्छुक प्यार-भरी दृष्टि से देखते हुए) और चाय भी हमने यही पी है ।

वसन्त · (प्रसन्नता से) व ···ा··· ह । मैं कहता हूं—अब तुम जीवन का रहस्य समझ पाई हो । जीवन का भेद बाह्य तडक-भडक मे नही, अन्तर की दृढता मे है । यदि, यदि हमारी प्रतिरोध-शक्ति, हमारी Power of Resistence कायम है ·· ··

मधु चाय भी अब आप यही पिया कीजिएगा, अपने नर्म-गर्म बिस्तर पर ।

वसन्त (अत्यधिक उल्लास से) वाह वा वाह ! अब इसी बात पर तुम मगला से कहो, मेरे लिए चाय का पानी रखे ।

मधु · अब तो आप नाराज नही है ?

वसन्त : (आश्चर्य से) नाराज !

मधु : आप इतने दिनो तक मन मे गुस्सा रख सकते है, यह मैंने स्वप्न मे भी न सोचा था।

वसन्त : (और भी आश्चर्य से) गुस्सा !

मधु : दो महीने से आपने ढग से पत्र तक नही लिखा।

वसन्त : पर मैंने ··

मधु : पत्र लिखे थे। जो ! "मै कुशल से हूं, अपनी कुशल का पता देना"—इसे पत्र लिखना कहते होगे।

वसन्त : (जोर से कहकहा लगाता है) तो तुम इसका कारण यह समझती हो कि मै तुमसे नाराज हूं ? पगली ! तुमसे भी कभी कोई नाराज हो सकता है।

मधु पर दो पक्तियाँ ·······

वसन्त दो पक्तियाँ लिखने का भी अवकाश मिल गया, तुम इसी को बहुत समझो।

मधु : अच्छा, आप जाकर हाथ-मुँह धो लीजिए। मै चाय तैयार करती हूँ।

वसन्त मै कहता हूँ, तुम कितनी · तुम कितनी ···तुम कितनी अच्छी हो।

मधु . (मुस्कराते हुए) अच्छा-अच्छा चलिए, पहले हाथ-मुंह धोकर कपडे बदलिए।

वसन्त : यह फिर तुमने कपडे बदलने की पख लगाई ?

मधु . क्यो कपडे न बदलिएगा ? एक रात और एक दिन गाडी मे सफर करके आये है। मार्ग की धूल सारे शरीर पर पड़ी हुई है। चलिए, चलिए, जल्दी हाथ-

मुँह धोकर कपडे बदलिए। मै इतने मे चाय तैयार करती हूँ। (वसन्त को स्नानगृह के दरवाज़े की ओर धकेल देती है और नौकरानी को आवाज़ देती है) मगला, मगला!

मगला : (दूसरे कमरे के दरवाजे से झाँकती है) जी, बीबी जी!

मधु सामान रखवा लिया या नही ?

मगला जी, बीबी जी ?

मधु यह ट्रे और प्यालियाँ उठा। पानी तो चाय का ठडा हो गया होगा। बाबू जी उधर हाथ-मुँह धोने गये है। मैं और पानी रखती हूँ। इतने मे यह पानी फेककर चायदानी और प्यालियाँ अच्छी तरह धो डाल।

[मगला ट्रे आदि उठाकर जाती है। एक चमचा गिर जाता है]

मधु . (कुछ तीखे स्वर मे) यह चमचा फिर फर्श पर गिरा दिया तूने। बीस बार कहा है कि चमचा न गिराया कर फर्श पर, चिप-चिप होने लगती है। अब ट्रे बाहर रखकर, इस जगह को गीले कपडे से पोछ डाल।

वसन्त . (स्नानगृह से) अरे भाई, साबुन कहाँ है ?

मधु · ध्यान से देखिये। वही तख्ती पर पडा है।

वसन्त . (वही से) और तौलिया ?

मधु हाथ-मुँह धो आइए और इधर कमरे से सूखा नया तौलिया लेकर पोछ लीजिए।

[मगला कपडे का टुकडा भिगोकर लाती है और चुपचाप फर्श साफ करने लगती है।]

मधु : तू फर्श साफ करके चायदानी और प्यालियाँ धो डाल और मैं पानी रखती हूँ चाय का।

[रसोई के दरवाज़े से चली जाती है। कुछ क्षण तक मगला चुपचाप फर्श साफ किये जाती है। फिर वसन्त हाथ-मुँह धोकर कुर्ते की आस्तीने चढाये, गुनगुनाता हुआ आता है—

हिंडोला कैसे झूलूं, मेरा जिया डोले रे।
मैं झूला कैसे झूलूं, मेरा जिया डोले रे॥

और अपने ध्यान मे मग्न कुर्सी की पीठ पर पडे हुए उस तौलिये से मुँह पोछने लगता है, जिससे सुरो और चिन्ती हाथ-मुँह पोछकर गई है।]

मधु : (रसोई-खाने से) यह केतली कैसी बना रखी है मगला तूने ? मनो तो मैल जमी हुई है पेंदे मे। (केतली हाथ मे लिये आ जाती है) तुझे कभी बर्तन न साफ करने आयेगे मगला। कितनी बार कहा है कि सफाई का ··· (अचानक वसन्त को सुरो वाले तौलिये से मुँह पोछते हुए देख कर लगभग चीखते हुए) यह सूखा नया तौलिया लिया है आपने ? मै पूछती हूँ, आप सूखे और गीले तौलिए मे भी तमीज नही कर सकते ! अभी तो सुरो और चिंती चाय पीकर इस तौलिए से हाथ पोछकर गई है।

वसन्त . (घबराकर) परन्तु नया ·

मधु · नया तौलिया उधर कमरे मे टँगा है।

वसन्त . ओह, ये कम्बख्त तौलिये! मुझे ध्यान ही नही रहता। वास्तव मे दोनो तौलिये साफ है, मुझे ·

मधु : जी साफ है। जरा आँख खोलकर देखिए! गीले और सूखे ......

वसन्त : मैने ऐनक उतार रखी है और ऐनक के बिना तुम जानती हो हमारी दुनिया .....

[खिसियानी हँसी हँसता है।]

मधु : जी, आपकी दुनिया। जाने आप किस दुनिया मे रहते है। अब तो ऐनक नही, ऐनक हो तो कौन-सा आपको कुछ दिखाई देता है।

[मुँह फुलाकर धम से कौच मे धँस जाती है।]

वसन्त : यह तुमने फिर मुँह लटका लिया। नाराज हो गई हो क्या ?

मधु . (व्यग्य से हँसकर) नही, मै नाराज नही।

वसन्त : (चिल्लाकर) तुम्हारा ख्याल है, मै इतना मूर्ख हूँ जो यह भी नही पहचान सकता।

[पर्दा सहसा गिर जाता है]

प्रश्न

१ मधु और वसन्त के चरित्रो का विश्लेषण कीजिए।

२. इस एकाकी मे बोलचाल के वाक्यो से इसकी सरसता मे वृद्धि हुई है। इसको सिद्ध करते हुए एक निबंध लिखिए।

३. अश्क की भाषा और सवादो के चुटीलेपन पर दस पक्तियाँ लिखिए।



श्री जगदीशचन्द्र माथुर

रीढ़ की हड्डी

पात्र

उमा—लड़की

रामस्वरूप—लड़की का पिता

प्रेमा—लड़की की माँ

शंकर—लड़का

गोपालप्रसाद—लड़के का बाप

रतन—नौकर

नाटककार का परिचय

जीवन-परिचय

श्री जगदीशचन्द्र माथुर का जन्म २६ जुलाई, १६१७ ई० को हुआ। बचपन से ही आपको अभिनय के प्रति रुचि रही है। प्रयाग विश्वविद्यालय मे अध्ययन काल मे, विश्वविद्यालय के रङ्ग-मंच पर अभिनय करने वाले छात्रो मे आप अग्रगण्य थे। आप उन एकाकी-लेखको मे से है, जो एकाकी के प्रथम उत्थान-काल मे ही साहित्य-क्षेत्र मे आए। माथुर जी बहुत ऊँचे उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर कार्य करते हुए भी साहित्य-साधना से विरत नहीं हुए।

आपने अपने नाटको मे जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। आपके पात्र अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व और चारित्रिक विशेषताएँ लिए होते हैं। आपने मध्यवर्ती जीवन को अपनी आलोचना का केन्द्र बनाया है। रङ्ग-मच के निर्माण, निर्देशन, अभिनय-सकेत आदि के सम्बन्ध मे आपको विशेष सफलता मिली है। वातावरण की सृष्टि मे भी आपकी सफलता उल्लेखनीय है। आजकल आप अखिल भारतीय आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र मे, डायरेक्टर जनरल के पद पर कार्य कर रहे हैं।

प्रस्तुत एकाकी

'रीढ की हड्डी' एक सफल और सबल व्यंग्य है। कन्याओ की सामाजिक स्थिति का इससे अनुमान किया जा सकता है। इसमे समाज की उस घृणित मनोवृत्ति का चित्रण किया गया है, जो कुमारी युवती को मेज-कुर्सी के समान बेज़ुबान और निरीह समझती है।

कृतियाँ

कोणार्क—नाटक।

भोर का तारा; ओ मेरे सपने—एकाकी-संग्रह।

[मामूली तरह से सजा हुआ एक कमरा। अन्दर के दरवाजे से आते हुए जिन महाशय की पीठ नजर आ रही है, वह अधेड उम्र के मालूम होते है, एक तख्त को पकडे हुए पीछे की ओर चलते-चलते कमरे मे आते है। तख्त का दूसरा सिरा उनके नौकर ने पकड रखा है।]

बाबू : अबे धीरे-धीरे चल। · अब तख्त को उधर मोड दे ·· उधर। · बस, बस।

नौकर · बिछा दूं साहब ?

बाबू : (जरा तेज आवाज मे) और क्या करेगा ? परमात्मा के यहाँ अक्ल बँट रही थी तो तू देर से पहुँचा था ? · बिछा दूं साहब ! ·· और यह पसीना किस लिए बहाया है ?

नौकर (तख्त बिछाता है) ही-ही-ही।

बाबू : हँसता क्यो है ? ·· अबे, हमने भी जवानी में कसरतें की हैं। कलसो से नहाता था लोटो की तरह। यह तख्त क्या चीज है ? · उसे सीधा कर··· यो ·· हाँ, बस। ·· और सुन, बहूजी से दरी माँग ला, इसके ऊपर बिछाने के लिए।····चद्दर भी, कल जो धोबी के यहाँ से आई है, वही।

[नौकर जाता है। बाबू साहब इस बीच मे मेजपोश ठीक करते हैं। एक झाडन से गुलदस्ते को साफ करते हैं। कुर्सियो पर भी दो-चार हाथ

लगाते हैं, सहसा घर की मालकिन प्रेमा आती है। गदुमी रंग, छोटा कद। चेहरे और आवाज़ से जाहिर होता है कि किसी काम मे बहुत व्यस्त हैं। उनके पीछे-पीछे भीगी बिल्ली की तरह नौकर आ रहा है—खाली हाथ। बाबू साहब रामस्वरूप दोनो की तरफ देखते हैं ···।]

प्रेमा . मैं कहती हूँ तुम्हे इस वक्त धोती की क्या जरूरत पड़ गई ? एक तो वैसे ही जल्दी-जल्दी मे ·

रामस्वरूप धोती ?

प्रेमा हाँ, अभी तो बदल कर आये हो, और फिर न जाने किस लिए ···

रामस्वरूप · लेकिन तुमसे धोती माँगी किसने ?

प्रेमा यही तो कह रहा था रतन।

रामस्वरूप क्यो बे रतन, तेरे कानो मे डाट लगी है क्या ? मैंने कहा था—धोबी के यहाँ से जो चद्दर आई है, उसे माँग ला अब तेरे लिए दूसरा दिमाग कहाँ से लाऊँ ! उल्लू कही का।

प्रेमा . अच्छा, जा, पूजावाली कोठरी मे लकडी के बक्स के ऊपर धुले हुए कपड़े रक्खे है न ? उन्ही मे से एक चद्दर उठा ला।

रतन · और दरी ?

प्रेमा दरी यही तो रक्खी है, कोने मे। वह पडी तो है।

रामस्वरूप . (दरी उठाते हुए) और बीबी जी के कमरे मे से हारमोनियम उठा ला, और सितार भी · जल्दी जा।

[रतन जाता है। पति-पत्नी तख्त पर दरी बिछाते है।]

नाश्ता तो तैयार है न ? (रतन का आना) आ गया रतन । ' इधर ला, इधर । बाजा नीचे रख दे । चद्दर खोल ।'' पकडा तो जरा उधर से ।

[चद्दर बिछाते है]

प्रेमा : नाश्ता तो तैयार है । मिठाई तो वे लोग ज्यादा खायेगे नही । कुछ नमकीन चीजे बना दी है। फल रक्खे है ही । चाय तैयार है, और टोस्ट भी । मगर हाँ, मक्खन ? मक्खन तो आया ही नही ।

रामस्वरूप क्या कहा ? मक्खन नही आया ? तुम्हे भी किस वक्त याद आई है । जानती हो कि मक्खन वाले की दुकान दूर है पर तुम्हे तो ठीक वक्त पर कोई बात सूझती ही नही । अब बताओ, रतन मक्खन लाये कि यहाँ का काम करे । दफ्तर के चपरासी से कहा था आने के लिए सो नखरो के मारे ···

प्रेमा · यहाँ का काम कौन ज्यादा है ? कमरा तो सब ठीक-ठाक है ही । बाजा-सितार आ ही गया । नाश्ता यहाँ बराबर वाले कमरे मे ट्रे मे रक्खा हुआ है, सो तुम्हे पकडा दूँगी । एकाध चीज खुद ले आना । इतनी देर मे रतन मक्खन ले ही आयेगा ।—दो आदमी ही तो है ?

रामस्वरूप हाँ, एक तो बाबू गोपालप्रसाद और दूसरा खुद लडका है । देखो, उमा से कह देना कि जरा करीने से आए। वे लोग ज़रा ऐसे ही है । गुस्सा तो मुझे बहुत आता

है इनके दकियानूसी ख़यालो पर। खुद पढे-लिखे है, वकील है, सभा-सोसाइटियो मे जाते है, मगर लडकी चाहते है ऐसी कि ज्यादा पढी-लिखी न हो।

प्रेमा और लडका ?

रामस्वरूप . बताया तो था तुम्हे। बाप सेर है तो लड़का सवा सेर। बी० एस-सी० के बाद लखनऊ मे ही तो पढता है, मेडिकल कॉलेज मे। कहता है कि शादी का सवाल दूसरा है, तालीम का दूसरा। क्या करूँ, मजबूरी है। मतलब अपना है वरना इन लडको और इनके बापो को ऐसी कोरी-कोरी सुनाता कि ये भी ।

रतन : (जो अब तक दरवाज़े के पास चुपचाप खडा हुआ था, जल्दी-जल्दी) बाबू जी, बाबू जी !

रामस्वरूप . क्या है ?

रतन . कोई आते है।

रामस्वरूप · (दरवाजे से बाहर झाँककर जल्दी मुंह अन्दर करते हुए) अरे, ए प्रेमा, वे आ भी गये। (नौकर पर नजर पडते ही) अरे, तू यही खडा है, बेवकूफ। गया नही मक्खन लाने ? ···सब चौपट कर दिया।····· ···अबे उधर मे नही, अन्दर के दरवाजे से जा (नौकर अन्दर आता है) ···और तुम जल्दी करो प्रेमा। उमा को समझा देना, थोडा-सा गा देगी।

(प्रेमा जल्दी से अन्दर की तरफ आती है। उसकी धोती ज़मीन पर रक्खे हुए बाजे से अटक जाती है।)

प्रेमा ऊँह। यह बाजा वह नीचे ही रख गया है, कमबख्त।
रामस्वरूप · तुम जाओ, मैं रखे देता हूँ। ·· जल्दी।

[प्रेमा जाती है। बाबू रामस्वरूप बाजा उठा कर रखते है। किवाडो पर दस्तक।]

रामस्वरूप हँ-हँ-हँ। आइए, आइए।· हँ-हँ-हँ।

[बाबू गोपालप्रसाद और उनके लडके शकर का आना। आँखो से लोक-चतुराई टपकती है। आवाज से मालूम होता है कि काफी अनुभव और फितरती महाशय है। उनका लडका कुछ खीसु निपोरने वाले नौजवानो मे से है। आवाज पतली है और खिसियाहट-भरी, भुकी कमर इनकी खासियत है।]

रामस्वरूप · (अपने दोनो हाथ मलते हुए) हँ-हँ, इधर तशरीफ लाइए इधर ।

[बाबू गोपालप्रसाद बैठते हैं, मगर बेत गिर पडता है]

रामस्वरूप यह बेत! लाइए मुझे दीजिए। (कोने मे रख देते है। सब बैठते है) हँ-हँ मकान ढूंढने मे कुछ तकलीफ तो नहीं हुई ?

गोपालप्रसाद : (खखारकर) नही। ताँगेवाला जानता था।···· और फिर हमे तो यहाँ आना ही था। रास्ता मिलता कैसे नही ?

रामस्वरूप · हँ-हँ-हँ। यह तो आपकी बडी मेहरबानी है। मैने आपको तकलीफ तो दी—

गोपालप्रसाद . अरे नही साहब! जैसा मेरा काम वैसा आपका काम। आखिर लडके की शादी तो करनी ही है।

बल्कि यों कहिए कि मैंने आपके लिए खासी परेशानी कर दी।

रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ ! यह लीजिए, आप तो मुझे काँटों में घसीटने लगे। हम तो आपके—हँ-हँ—सेवक ही है—हँ-हँ ! (थोडी देर बाद लडके की ओर मुखातिब होकर) और कहिए, शकर बाबू, कितने दिनो की और छुट्टियाँ है?

शंकर : जी, कालिज की तो छुट्टियाँ नही है। 'वीक एण्ड' मे चला आया था।

रामस्वरूप : तो आपके कोर्स खत्म होने मे तो अब साल-भर रहा होगा ?

शंकर : जी, यही कोई साल दो साल।

रामस्वरूप : साल दो साल ?

शकर : हँ-हँ-हँ... ... जी, एकाध साल का 'मार्जिन' रखता हूँ...

गोपालप्रसाद : बात यह है साहब कि यह शंकर एक साल बीमार हो गया था। क्या बताएँ, इन लोगो को इसी उम्र मे सारी बीमारियाँ सताती है। एक हमारा जमाना था कि स्कूल से आकर दर्जनो कचौड़ियाँ उड़ा जाते थे, मगर फिर जो खाना खाने बैठते तो वैसी की वैसी ही भूख।

रामस्वरूप : कचौड़ियाँ भी तो उस जमाने मे पैसे की दो आती थी।

गोपालप्रसाद : जनाब, यह हाल था कि चार पैसे मे ढेर-सी बालाई आती थी और अकेले दो आने की हजम

करने की ताकत थी, और अब तो बहुतेरे खेल वगैरह भी होते है स्कूल मे। तब न कोई वॉलीबॉल जानता था, न टेनिस, न बैडमिण्टन। बस, कभी हॉकी या कभी क्रिकेट कुछ लोग खेला करते थे। मगर मजाल कि कोई कह जाय कि यह लड़का कमजोर है।

[शकर और रामस्वरूप खीसे निपोरते हैं]

रामस्वरूप : जी हाँ, जी हाँ, उस जमाने की बात ही दूसरी थी हँ-हँ।

गोपालप्रसाद : (जोशीली आवाज मे) और पढाई का यह हाल था कि एक बार कुर्सी पर बैठे कि बारह घण्टे की 'सिटिंग' हो गई, बारह घण्टे! जनाब, मैं सच कहता हूँ कि उस जमाने का मैट्रिक भी वह अँग्रेजी लिखता था फर्राटे की कि आजकल के एम० ए० भी मुकाबला नही कर सकते।

रामस्वरूप : जी हाँ, जी हाँ! यह तो है ही।

गोपालप्रसाद · माफ कीजिएगा बाबू रामस्वरूप, उस जमाने की जब याद आती है, अपने को जब्त करना मुश्किल हो जाता है!

रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ! ··जी हाँ, वह तो रगीन जमाना था, रंगीन ज़माना! हँ-हँ-हँ?

[शकर भी ही-ही करता है]

गोपालप्रसाद : (एक साथ अपनी आवाज और तरीका बदलते हुए) अच्छा, तो साहब, फिर 'बिजनेस' की बातचीत हो जाय।

रामस्वरूप (चौंककर) बिज़नेस ! —विज़ि··· ·· (समझकर) ओह ···अच्छा, अच्छा। लेकिन ज़रा नाश्ता तो कर लीजिए।

[उठते है]

गोपालप्रसाद : यह सब आप क्या तकल्लुफ करते है ?

रामस्वरूप . हँ·· हँ हँ ! तकल्लुफ किस बात का ! हँ–हँ ! यह तो मेरी बडी तकदार है कि आप मेरे यहाँ तशरीफ लाये। वरना मैं किस काबिल हूँ। हँ–हँ ! ·· माफ कीजियेगा ज़रा। अभी हाजिर हुआ।

[अन्दर जाते है]

गोपालप्रसाद · (थोडी देर बाद दबी आवाज मे) आदमी तो भला है, मकान-वकान से हैसियत भी बुरी नही मालूम होती। पता चले, लडकी कैसी है।

शंकर . जी···

[कुछ खखारकर इधर-उधर देखता है]

गोपालप्रसाद : क्यो,क्या हुआ ?

शकर . कुछ नही।

गोपालप्रसाद : झुककर क्यो बैठते हो ? ब्याह तय करने आये हो, कमर सीधी करके बैठो। तुम्हारे दोस्त ठीक कहते है कि शकर की 'बैकबोन'····

[इतने मे बाबू रामस्वरूप आते हैं, हाथ मे चाय की ट्रे लिये हुए मेज पर रख देते हैं]

बैकबोन = रीढ की हड्डी

गोपालप्रसाद : आखिर आप माने नही।

रामस्वरूप : (चाय प्याले मे डालते हुए) हँ-हँ-हँ ! आपको विलायती चाय पसन्द है या हिन्दुस्तानी ?

गोपालप्रसाद : नही-नही साहब, मुझे आधा दूध और आधी चाय दीजिए और ज़रा चीनी ज्यादा डालिएगा। मुझे तो भाई यह नया फैशन पसन्द नही। एक तो वैसे ही चाय मे पानी काफी होता है, और फिर चीनी भी नाम को डाली जाय तो जायका क्या रहेगा?

रामस्वरूप : हँ-हँ, कहते तो आप सही है।

[प्याला पकडाते है।]

शंकर : (खखारकर) सुना है, सरकार अब ज्यादा चीनी लेने वालो पर 'टैक्स' लगाएगी।

गोपालप्रसाद : (चाय पीते हुए) हूँ। सरकार जो चाहे सो कर ले; पर अगर आमदनी करनी है तो सरकार को बस एक ही टैक्स लगाना चाहिए।

रामस्वरूप : (शकर को प्याला पकडाते हुए) वह क्या ?

गोपालप्रसाद : खूबसूरती पर टैक्स (रामस्वरूप और शकर हँस पडते हैं) मज़ाक नही साहब, यह ऐसा टैक्स है जनाब कि देने वाले चूं भी न करेगे। बस, शर्त यह है कि हर एक औरत पर यह छोड़ दिया जाय कि वह अपनी खूबसूरती के 'स्टैन्डर्ड' के माफिक अपने ऊपर टैक्स तय

कर ले। फिर देखिए, सरकार की कैसी आमदनी बढती है।

रामस्वरूप (जोर से हँसते हुए) वाह-वाह ! खूब सोचा आपने ! वाकई आजकल यह खूबसूरती का सवाल भी बेढब हो गया है। हम लोगो के जमाने मे तो यह कभी उठता भी न था। (तश्तरी गोपाल प्रसाद की तरफ बढाते है) लीजिए।

गोपालप्रसाद · (समोसा उठाते हुए) कभी नही साहब, कभी नही।

रामस्वरूप : (शकर की तरफ मुखातिब होकर) आपका क्या खयाल है शकर बाबू ?

शकर : किस मामले मे।

रामस्वरूप · यही कि शादी तय करने मे खूबसूरती का हिस्सा कितना होना चाहिए।

गोपालप्रसाद (बीच मे ही) यह बात दूसरी है बाबू रामस्वरूप, मैने आपसे पहले भी कहा था, लडकी का खूबसूरत होना निहायत जरूरी है। कैसे भी हो, चाहे पाउडर वगैरह लगाये, चाहे वैसे ही। बात यह है कि हम-आप मान भी जायँ, मगर घर की औरते तो राजी नही होती। आपकी लड़की तो ठीक है ?

रामस्वरूप : जी हाँ, वह तो अभी आप देख लीजिएगा।

गोपालप्रसाद : देखना क्या ! जब आपसे इतनी बातचीत हो चुकी है, तब तो यह रस्म ही समझिए।

रामस्वरूप : हँ-हँ, यह तो आपका मेरे ऊपर भारी अहसान है। हँ-हँ ।

गोपालप्रसाद · और जायचा (जन्मपत्र) तो मिल ही गया होगा ?

रामस्वरूप . जी, जायचे का मिलना क्या मुश्किल बात है। ठाकुरजी के चरणो मे रख दिया। वस, खुद-बखुद मिला हुआ समझिए ।

गोपालप्रसाद : यह ठीक कहा आपने, विल्कुल ठीक (थोडी देर रुककर) लेकिन हाँ, यह जो मेरे कानो मे भनक पडी है, यह तो गलत है न ?

रामस्वरूप · (चौंककर) क्या ?

गोपालप्रसाद : यही पढ़ाई-लिखाई के वारे मे ! ····· जी हाँ, साफ बात है साहब, हमें ज्यादा पढी-लिखी लड़की नही चाहिए। मेम साहव तो रखनी नही, कौन भुगतेगा उनके नखरो को। बस, हद से हद मैट्रिक पास होनी चाहिए ····क्यों शकर ?

शंकर : जी हाँ, कोई नौकरी तो करानी नही ।

रामस्वरूप : नौकरी का तो सवाल ही नही उठता है।

गोपालप्रसाद . और क्या साहब ! देखिए, कुछ लोग मुझसे कहते है कि जब आपने अपने लडकों को बी० ए०, एम० ए० तक पढाया है तब उनकी बहुएँ भी ग्रैजुएट लीजिए। भला पूछिए इन अक्ल के ठेकेदारो से कि क्या लड़को की पढाई और लडकियों की पढाई एक बात है। अरे, मर्दो का काम तो है ही पढना और काबिल

होना। अगर औरतें भी वही करने लगीं, अंग्रेजी अखबार पढने लगीं और 'पॉलिटिक्स' वगैरह पर बहस करने लगीं तब तो हो चुकी गृहस्थी। जनाब, मोर के पंख होते हैं, मोरनी के नहीं, शेर के बाल होते हैं शेरनी के नहीं।

रामस्वरूप : जी हाँ, और मर्द के दाढी होती है, औरतों के नहीं। हँ...हँ...हँ!

[शंकर भी हँसता है, मगर गोपालप्रसाद गम्भीर हो जाते हैं]

गोपालप्रसाद : हाँ, हाँ। वह भी सही है। कहने का मतलब यह है कि कुछ बातें दुनिया में ऐसी हैं जो सिर्फ मर्दों के लिए हैं और ऊँची तालीम भी ऐसी चीजोंमें से एक है।

रामस्वरूप : (शंकर से) चाय और लीजिए।

शंकर : धन्यवाद। पी चुका।

रामस्वरूप : (गोपालप्रसाद से) आप ?

गोपालप्रसाद : बस साहब, अब तो खत्म ही कीजिए।

रामस्वरूप आपने तो कुछ खाया ही नहीं। चाय के साथ 'टोस्ट' नहीं थे। क्या बताये, वह मक्खन—

गोपालप्रसाद : नाश्ता ही तो करना था साहब, कोई पेट तो भरना था नहीं। और फिर टोस्ट-वोस्ट मैं खाता भी नहीं।

रामस्वरूप : हँ—हँ। (मेज को एक तरफ सरका देते हैं। फिर अन्दर के दरवाजे की तरफ मुँहकर जरा जोर से) अरे, जरा पान भिजवा देना....! · सिगरेट मँगवाऊँ ?

गोपालप्रसाद : जी नहीं।

[पान की तश्तरी हाथो मे लिए उमा आती है। सादगी के कपड़े। गर्दन झुकी हुई। बाबू गोपालप्रसाद आँखे गड़ाकर और शकर आँखें छिपाकर उसे ताक रहे है।]

रामस्वरूप. हँ ··हँ ! यही, हँ ···हँ, आपकी लड़की है। लाओ बेटी पान मुझे दो।

[उमा पान की तश्तरी अपने पिता को देती है। उस समय उसका चेहरा ऊपर को उठ जाता है और नाक पर रखा हुआ सोने की रिमवाला चश्मा दीखता है। बाप-बेटे चौंक उठते है।]

गोपालप्रसाद और शकर } : (एक साथ) चश्मा !!

रामस्वरूप . (जरा सकपकाकर) जी, वह तो ···वह ···पिछले महीने मे इसकी आँखे दुखनी आ गई थी, सो कुछ दिनो के लिए चश्मा लगाना पड़ रहा है।

गोपालप्रसाद : पढाई-वढाई की वजह से तो नही है कुछ ?

रामस्वरूप . नही साहब, वह तो मैंने अर्ज किया न।

गोपालप्रसाद : हूँ (सन्तुष्ट होकर कुछ कोमल स्वर मे) बैठो बेटी।

रामस्वरूप : वहाँ बैठ जाओ उमा, उस तख्त पर, अपने बाजे-बाजे के पास।

[उमा बैठती है]

गोपालप्रसाद : चाल में तो कुछ खराबी है नही। चेहरे पर भी छवि है।·······हाँ, कुछ गाना-बजाना सीखा है ?

रामस्वरूप : जी हाँ, सितार भी, और बाजा भी। सुनाओ तो उमा एकाध गीत सितार के साथ।

[उमा सितार उठाती है। थोडी देर बाद मीरा का मशहूर गीत 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई' गाना शुरू कर देती है। स्वर से ज़ाहिर है कि गाने का अच्छा ज्ञान है। उसके स्वर मे तल्लीनता आ जाती है, यहाँ तक कि उसका मस्तक उठ जाता है। उसकी आँखे शकर की झेंपती-सी आँखो से मिल जाती हैं और वह गाते-गाते एक साथ रुक जाती है।]

रामस्वरूप · क्यों, क्या हुआ ? गाने को पूरा करो उमा।

गोपालप्रसाद नहीं-नही साहब, काफो है। लड़की आपको अच्छा गाती है।

[उमा सितार रखकर अन्दर जाने को उठती है।]

गोपालप्रसाद · अभी ठहरो, बेटी।

रामस्वरूप : थोड़ा और बैठी रहो, उमा ! (उमा बैठती है)

गोपालप्रसाद : (उमा से) तो तुमने पेंटिग-वेंटिग भी सीखी है ?

उमा : (चुप)

रामस्वरूप · हाँ, वह तो मैं आपको बताना भूल ही गया। यह जो तसवीर टँगी हुई है, कुत्ते वाली, इसी ने खींची है। और वह उस दीवार पर भी।

गोपालप्रसाद . हूँ ! यह तो बहुत अच्छा है। और सिलाई वगैरह ?

रामस्वरूप . सिलाई तो सारे घर की इसी के जिम्मे रहती है, यहाँ तक कि मेरी कमीजे भी। हँ····हँ···हँ।

गोपालप्रसाद : ठीक।' लेकिन, हाँ बेटी, तुमने कुछ इनाम-विनाम भी जीते है ?

[उमा चुप। रामस्वरूप इशारे के लिए खाँसते हैं। लेकिन उमा

चुप है उसी तरह गर्दन झुकाये। गोपालप्रसाद अधीर हो उठते हैं और रामस्वरूप सकपकाते हैं।]

रामस्वरूप : जवाब दो, उमा। (गोपाल से) हँ-हँ, ज़रा शरमाती है, इनाम तो इसने.......

गोपालप्रसाद : (ज़रा रुखी आवाज़ मे) जरा इसे भी तो मुँह खोलना चाहिए।

रामस्वरूप उमा, देखो, आप क्या कह रहे है। जवाब दो न।

उमा : (हल्की लेकिन मजबूत आवाज़ मे) क्या जवाब दूँ बाबू जी! जब कुर्सी-मेज़ बिकती है तब दुकानदार कुर्सी-मेज से कुछ नही पूछता, सिर्फ खरीददार को दिखला देता है। पसन्द आ गई तो अच्छा है, वरना......

रामस्वरूप : (चौककर खडे हो जाते है) उमा, उमा!

उमा : अब मुझे कह लेने दीजिए बाबू जी।..ये जो महाशय खरीददार बनकर आये है, इनसे जरा पूछिए कि क्या लड़कियो के दिल नही होता? क्या उनके चोट नहीं लगती? क्या वे बेबस भेड-बकरियाँ है, जिन्हे कसाई अच्छी तरह देख-भालकर खरीदते है?

गोपालप्रसाद : (ताव मे आकर) बाबू रामस्वरूप, आपने मेरी इज्जत उतारने के लिए मुझे यहाँ बुलाया था?

उमा : (तेज आवाज़ मे) जी हाँ, और हमारी बेइज्जती नही होती जो आप इतनी देर से नाप-तोल कर रहे हैं? और रा अपने इन साहबजादे से पूछिए कि अभी

पिछली फरवरी मे ये लडकियों के होस्टल के इर्द-गिर्द क्यो घूम रहे थे, और वहाँ से कैसे भगाए गए थे।

शंकर : बाबूजी, चलिए।

गोपालप्रसाद : लडकियो के होस्टल मे ?...... क्या तुम कॉलेज मे पढी हो ?

[रामस्वरूप चुप]

उमा : जी , मै कॉलिज मे पढी हूँ। मैने बी० ए० पास किया है। कोई पाप नही किया, कोई चोरी नही की, और न आपके पुत्र की तरह ताक-झाँककर कायरता दिखाई। मुझे अपनी इज्जत—अपने मान का खयाल तो है। लेकिन इनसे पूछिए कि ये किस तरह नौकरानी के पैरो पडकर अपना मुँह छिपाकर भागे थे।

रामस्वरूप : उमा, उमा...!

गोपालप्रसाद : (खड़े होकर गुस्से मे) बस, हो चुका ! बाबू रामस्वरूप, आपने मेरे साथ दगा किया। आपकी लड़की बी० ए० पास है, और आपने मुझसे कहा था कि सिर्फ मैट्रिक तक पढी है। लाइए, मेरी छडी कहाँ है ? मै चलता हूँ। (छडी ढूंढकर उठाते हैं) बी० ए० पास ? उफ्फोह ! गजब हो जाता ! झूठ का भी कुछ ठिकाना है ! आओ बेटे, चलो......

[दरवाज़े की ओर बढते हैं।]

उमा : जी हाँ, जाइए, जरूर चले जाइए। लेकिन घर जाकर जरा यह पता लगाइएगा कि आपके लाड़ले बेटे के रीढ़ की हड्डी भी है या नही—यानी बैकबोन, बैकबोन—

[बाबू गोपालप्रसाद के चेहरे पर बेबसी का गुस्सा आता है और उनके लडके के रुआसापन। दोनो बाहर चले जाते हैं। बाबू रामस्वरूप कुर्सी पर धम से बैठ जाते हैं। उमा सहसा चुप हो जाती है। लेकिन उसकी हँसी सिसकियो मे तब्दील हो जाती है। प्रेमा का घबराहट की हालत मे आना]

प्रेमा : उमा, उमा····· रो रही है ?

[यह सुनकर रामस्वरूप खडे होते है। रतन आता है।]

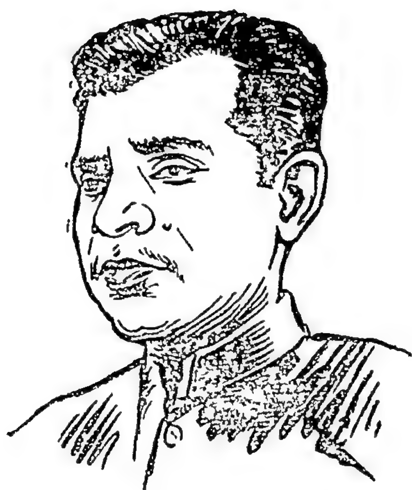
रतन : बाबू जी मक्खन !

[सब रतन की तरफ देखते हैं और पर्दा गिरता है।]

प्रश्न

१. उमा के चरित्र के सम्बन्ध मे १० पंक्तियां लिखे।
२. इस एकाकी को लिखने मे एकाकीकार का मुख्य उद्देश्य क्या रहा है ?
३. क्या लडके द्वारा लडकी के देखने की प्रथा अनुचित है ?





श्री विष्णु प्रभाकर

माता-पिता

पात्र

अशोक—कॉलिज का एक विद्यार्थी

यदुनाथ—अशोक का सहपाठी

प्रभुदास—अशोक का पिता

रामदास—यदुनाथ का पिता

डा० प्रभात—देश के प्रसिद्ध नेता

कलावती—अशोक की मा

जगवन्ती—यदुनाथ की मा

अनिता—अशोक की बहिन

नाटककार का परिचय

जीवन-परिचय

श्री विष्णु प्रभाकर का जन्म १२ जून, सन् १९१२ में हुआ। आपने बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की है। नए एकांकीकारो मे आपका प्रमुख स्थान है। वैसे तो आप १९३९ से एकाकी लिख रहे हैं, परन्तु इधर आपकी कला मे अभूतपूर्व निखार आ गया है। आपकी कृतियों में आदर्शोन्मुख यथार्थ का सन्देश है। मानव-प्रवृत्तियों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मे आपको विशेष सफलता मिली है। रंग-मंच के लिए तो आपने सफल एकाकी लिखे ही हैं, रेडियो-एकाकी में भी आपको पूरी-पूरी सफलता मिली है।

एकाकी के अतिरिक्त आपने कहानी और उपन्यास भी लिखे हैं।

प्रस्तुत एकाकी

प्रस्तुत एकाकी 'माता-पिता' मे लेखक ने अपनी सतान के प्रति मां बाप का अतिशय प्यार और लोकोपकारी पुत्र का सफल चित्र खींचा है। माता-पिता अपने प्यार और ममता से सन्तान को स्वार्थ के घेरे में न बाधकर त्यागी, धीर और मनुष्यता का पुजारी बनाएं और यदि मनुष्यता की सेवा करते-करते वह अपने प्राण भी दे दे तो उसके लिए पश्चात्ताप न कर गौरव अनुभव करें, यही आदर्श इस नाटक में रखा गया है।

कृतियाँ

डाक्टर, समाधि, मां-बेटा, क्या वह दोषी था ?—नाटक।

हमारा स्वाधीनता-सग्राम, अशोक—एकाकी-सग्रह।

ढलती रात, तट के बन्धन—उपन्यास।

धरती अब भी घूम रही है, रहमान का बेटा, जिन्दगी के थपेड़े—कहानी-संग्रह।

प्रथम दृश्य

(डाक्टर तथा दो युवक)

[रंगमंच पर एक छोटे से कसबे के एक मकान का कमरा दिखाई देता है। आगे चौक है। आवश्यकता होने पर मकान की बाहिरी दीवार हटाई जा सकती है। परदा उठने पर दीवार हटी हुई है। कमरे का भीतरी भाग दिखाई देता है। एक दूकानदार का कमरा है। उसी मे सोते-बैठते हैं। अनुपात से सामान उसमे बहुत है। कपडो के तीन ट्रक, दो चौड की छोटी-छोटी मेजें, दो मोढे और दो चारपाइयाँ। ऊपर की दीवार पर केवल नये साल का एक कैलेंडर लटका है। एक अलमारी है, उसमे कुछ पुस्तकें, टीन के डब्बे, दो चाय-दानियाँ और दो-तीन गिलास हैं। ऊपर आले मे सस्ती टाइमपीस सवेरे के छः बजा रही है।

कमरे के बीच दो चारपाइयाँ पास-पास बिछी है। बिछावन साधारण है। दरवाजे के पास वाली चारपाई पर एक पुरुष आँखें बन्द किये लेटा है। उसे ज्वर चढा है। क्षण-क्षण मे जागकर वह द्वार की ओर देख लेता है। फिर लम्बी सास लेकर आँखें मीच लेता है। उसकी आयु ५० के ऊपर है। दूसरी चारपाई पर एक लडकी चादर ताने गहरी नीद मे सोई है। सहसा एक स्त्री तेजी से वहाँ आती है। आयु लगभग ४५ वर्ष की है। रंग गोरा और आकृति सुन्दर है।]

कलावती : (खुश होकर) बाहर शोर मच रहा है। जान पडता है कि अशोक आ गया।

प्रभुदास : (एकदम उठकर) अशोक आ गया है ? कहाँ है ?

कलावती : आप क्यो उठे ? लेट जाइए। मैं देखती हूँ।

[स्त्री शीघ्रता से चली जाती है। पुरुष उसी तरह बैठा रह जाता है। स्त्री फिर आती है।]

प्रभुदास : (निराश स्वर) अशोक नही आया। रामबाबू देहली जा रहे है। न जाने अशोक क्यो नही आया। छुट्टी हुए चार दिन हो गए।

[प्रभुदास चुपचाप आँखे बन्द कर लेते हैं। फिर एक दम खोलकर कहते हैं।]

प्रभुदास : इस बार अशोक का वर्ष-फल पडित रामसेवक ने बनाया है। कहते है कि इस वर्ष ग्रह बहुत सुन्दर है। जल्दी ही उसका नाम ससार भर मे फैल जायगा।

कलावती : (प्रसन्नता से भरकर) सच !

प्रभुदास : पण्डित रामसेवक माने हुए ज्योतिषी है। उनकी बात भूठ नही हो सकती और देखो न, अभी से उसका नाम अखबारो मे छपने लगा है।

(भावावेश)

कलावती : (श्रद्धा से) पुत्र के भाग्य के साथ मा-बाप का भाग्य भी जुड़ा होता है।

प्रभुदास : (गद्गद होकर) कुछ भी हो, एक दिन दुनिया इस बात को जान लेग कि प्रभुदास ने आप कष्ट उठाये परन्तु लड़के को शिक्षा देने मे कोई कसर न उठा रखी।

[इसी समय पास की चारपाई पर अनिता बड़बड़ा उठती है।]

कलावती : (चौंककर) क्या है अनिता ?

प्रभुदास : (चौंककर) बेटी, बेटी, क्या है ?

अनिता : (नीद मे) भइया……(जोर से) भइया, तुम कहाँ जा रहे हो ? (करुणा से) मै तुम्हारे साथ चलूंगी, भइया (जोर से) ओ भइया……

कलावती : (पास जाकर) अनिता-अनिता !

अनिता ˙ (हडवडाकर) मा !

कलावती . क्या है वेटो ?

[अनिता उठ बैठती है। वह लगभग १५ साल की सुन्दर लडकी है। घवराहट के कारण इधर-उधर देखती है पर मा को देखकर ढाढस होता है।]

कलावती : (पास बैठकर) सपना देखती थी, बेटी ! क्या था ?

अनिता : बडा बुरा सपना था, माँ। भइया न जाने कहाँ चले गये ?

प्रभुदास : (मुस्कराकर) कहाँ चले गये अनिता ?

अनिता : पिता जी, मै और भइया एक वाटिका मे बैठे थे। तभी एक युवक ने आकर कहा, अशोक लडाई आरम्भ हो गयी। वह पागल हो उठे हैं। आओ, हम उन्हें रोके। भइया उसी वक्त जाने को तैयार हो गये। मैंने पूछा, 'कौन लड रहा है, भइया।' पर वह नहीं बोले। बस, चले गये। उसी तरह नगे पाँव, निहत्थे।

कलावती : नंगे पाँव निहत्था (एकदम) फिर क्या हुआ ?

अनिता : फिर मेरी आंख खुल गई ।

प्रभुदास . (सोचकर) सपने का फल अच्छा होगा । डरने की कोई बात नही ।

कलावती : सच, अच्छा होगा ?

प्रभुदास : हॉ, ऐसे सपनों से आयु बढने का योग होता है ।

अनिता : तव तो ठीक है, मां ! (मुडकर) ज्वर कैसा है, पिताजी ?

प्रभुदास : (हंसकर) उतर जायगा वेटा । (रामदास का प्रवेश) कौन रामदास । आओ रामदास । कैसे आये ?

रामदास : ज्वर उतरा भइया ?

प्रभुदास · उतर जायगा ? हाँ, क्या यदु आ गया ?

रामदास : वही तो पूछता था । अशोक भी नहीं दिखाई देता । क्या वात है, चार दिन हो गए । यदु की मां रो-रोकर पागल हो रही है ।

प्रभुदास · (हंसकर) तुम्हारी स्त्री बड़ी कच्ची है । अरे ! वे क्या वालक हैं जो खो जाएँगे । युवक हैं पर हाँ, उन्हे चिट्ठी डाल देनी चाहिये थी ।

रामदास : यही तो भइया । यह कहती है तुम जाओ ।

कलावती : वह मा है, रामदास ! मां का दिल वड़ा पापी होता है ।

रामदास . और तुम क्या हो भाभी ?

प्रभुदास · अरे रामदास ! यह भी कम नही है । रात भर गाड़ी की गडगड़ाहट कानों में गूंजती रही है और यह

अनिता तो सोते-सोते भी 'भइया-भइया' चिल्ला रही थी। (हँसता है) जा बेटी, जरा वैद्यजी को देखना। आ गये हो तो मैं जाऊँगा।

अनिता . अच्छा, पिताजी। (जाती है)

[इसी समय तेजी से जगवन्ती का प्रवेश। हाथ मे तार है। घबरा रही है।]

जगवन्ती . तार आया है। वहाँ लड़ाई हो गई है।

कलावती : (एकदम) कहाँ ?

प्रभुदास : लड़ाई ! कैसी लडाई ?

रामदास : किसने कहा? देखूँ तार।

[तार लेकर व्यग्रता से पढता है]

"नगर मे लडाई फूट पडी है। गुण्डे नागरिकों को तग कर रहे है। आने मे एक-दो दिन की देरी हो सकती है। चिन्ता की बात नही है। हम सकुशल है।" तो यह बात है। मैं भी कहूँ कि वे अब तक आये क्यो नही।

प्रभुदास : पर वे तो सकुशल है। चिन्ता की कोई बात नही, यही लिखा है न।

रामदास : हाँ !

प्रभुदास . लेकिन लडाई कैसे हुई ?

कलावती : लडाई के बारे मे कुछ नही लिखा ?

रामदास : नही। पर मैं अखबार लाता हूँ, उसमे जरूर सब बाते लिखी होगी। (तेजी से जाता है)

प्रभुदास : कुछ भी हो कॉलेज शहर से दूर है।

कलावती . हॉं, वे लोग लड़ाई मे नही गये होगे।

जगवन्ती तुम नही जानतीं, भाभी। वे जरूर गये होंगे।

कलावती कैसे गये होगे ? कॉलेज वाले क्या उन्हे जाने देगे ?

प्रभुदास ' हॉं, नही जाने देगे। पर यह लड़ाई हुई कैसे ?

जगवन्ती . यही तो पता नही।

कलावती . अभी पता लग जायगा। देवर जी को आने दो।

जगवन्ती : भगवान करे सब ठीक हो।······लो वह आ गये।

(तेजी से रामदास का प्रवेश)

प्रभुदास : क्या है रामदास ? क्या खबर आई ?

रामदास ' (बोलते हुए हांफता है) शहर मे बहुत जोर का दंगा हो गया है।

कलावती : ओह !

जगवन्ती कॉलेज का कुछ नही लिखा।

रामदास . (उसी तरह पढता हुआ) नगर के प्रतिष्ठित लोग और सभायें दगा रोकने का प्रयत्न कर रही है। उन्होने सरकार के साथ सहयोग किया है, लेकिन सबसे बढकर कॉलेज की ही एक पार्टी है।

कलावती : (कांपकर) कॉलेज की ही पार्टी······

जगवन्ती ' क्या दंगा कॉलेज मे हुआ था ?

रामदास . हां, कॉलेज के लडको ने हड़ताल की थी। आपसी झगड़ा था पर धीरे-धीरे वह बढ गया।

प्रभुदास : लेकिन हमे तो कुछ पता नही।

कलावती क्या अशोक और यदु भी उस झगड़े में थे ?

रामदास इन बातों का तो कुछ पता नही लगता। पर वह झगडा बहुत बढ गया और नगर के गुण्डो को मौका मिल गया। उन्होने जगह-जगह आग लगा दी।

जगवन्ती · (घबराकर) आग लगा दी।

रामदास : हॉ आग लगा दी, लूटा, हत्याये की। तब मानवता के पुजारी पन्द्रह नवयुवक पागलो की तरह आग में कूद पडे। उन्होने सैकड़ो निर्दोष आदमियो को मरने से बचाया है। उनका नेता एक सुन्दर युवक है। उसका नाम अशोक है।

कलावती : (कॉपकर) अशोक ! मेरा अशोक ! मेरा अशोक लडाई मे है ?

प्रभुदास · क्या अशोक उनका नेता है ? मेरा बेटा अशोक !

जगवन्ती लेकिन यदु का नाम नही है। वह जरूर उसके साथ होगा। वह अशोक को नही छोड सकता।

प्रभुदास : अशोक का नाम अखबार मे छपा है। देखा, मैं कहता था न·· ···

कलावती . (अनसुना करके) अशोक अब नहीं आयेगा। अशोक का नाम · ··

[वह बोल नही सकती, उसका हृदय उमड कर वह पडता है।]

रामदास : (ढाढस के स्वर मे) भाभी ! रोती हो ? नहीं भाभी. जो पुण्यात्मा है, भगवान् उनकी रक्षा करते है।

जगवन्ती · भाभी मैं कहती थी न कि मेरा दिल घबरा रहा है। मैं सब कुछ जानती थी। बेटा मा के दिल ही मे तो रहता है। भाभी, तुम रोती हो लेकिन मैं क्या करूँ······मैं क्या करूँ ? (रामदास से) सुनते हो, मैं जाऊँगी। मैं अभी जाऊँगी·· ··· ।

रामदास . कहाँ जाओगी ? वहाँ के रास्ते बन्द है।

कलावती . रास्ते बन्द है ?

रामदास . हाँ भाभी, रास्ते बन्द है। शरारती लोगो ने साधारण से आपसी झगडे को साम्प्रदायिक रूप दे दिया। अब तो हमे परमेश्वर से ही प्रार्थना करनी चाहिए।

जगवन्ती : (रोती हुई) परमेश्वर···परमेश्वर ··!

कलावती . (हठात स्वस्थ होकर) रोओ मत, जगवन्ती। रोना पाप है।

प्रभुदास . हाँ, रोना पाप है। रामदास, यह सब क्या हो गया। अनिता का सपना (अनिता का हाँफते-हाँफते प्रवेश)

अनिता : मा ! क्या भइया लडाई मे चले गये ?

कलावती : (दृढता से) हाँ बेटी। तुम्हारे भइया ने यदु के साथ सैकडो जाने बचायी। वह सकुशल है।

अनिता : (रामदास से) सचमुच चाचा जी ?

रामदास : सच बेटी। यह अखबार है, तू पढ ले न।

[अनिता अचरज से पढती है। आंखो मे पानी भर आता है। जगवन्ती पागलो की तरह उसे देखती है। रामदास भी उमडते हुए हृदय से आँसू रोकता है। केवल कलावती मुस्कराती है। अनिता एक दम पढना बन्द कर देती है।]

अनिता : चाची, तुम रोओ मत। पिताजी, भइया ने वहुत सुन्दर काम किया है। मैं अभी जाकर सबसे कहती हूँ।

[अनिता झटपट जाती है।]

रामदास : मैं अभी जाकर ताजा खबर देखता हूँ। (जाता है)

जगवन्ती : (रोती हुई) तुम सब कठोर हो पर मैं क्या करूँ। जिस दिन अशोक और यदु मुझे आकर प्रणाम करेंगे, उसी दिन मैं समझूंगी परमेश्वर ने बड़ा काम किया है। नही तो··नही··ओह। मैं क्या करूँ ? (जाती है)

प्रभुदास : मैं भी वैद्य जी के पास जाता हूँ। वही पर नई खबरो का पता लगेगा। रामसेवक पडित की बात कितनी ठीक हो रही है। अशोक का नाम अब चारो ओर फैल जायगा।

कलावती : ऐसा पुत्र पाकर हम धन्य हुए। न जाने हमने कितने पुण्य किये होगे। लेकिन भगवान उसे कुशल से रखे। कही··· ओह··मैं चाहती हूँ कि उडकर उसके पास पहुँच जाऊँ और छाया की तरह उसके साथ लगी रहूँ। (हठात् चौंककर) कौन ?

अनिता · (आवाज सुनाई देती है) माँ, पिता जी। यदु भइया आये !····

कलावती · (एकदम) यदु आया है, कहाँ है ? सुना जी, यदु आया है।

[अनिता का प्रवेश वह हाफ रही है।]

अनिता . पिता जी ! यदु भइया अभी आये है। वह कहते है, भइया कुशल से है।

प्रभुदास वह ठीक है। मैं कहता था न। लेकिन यदु कहाँ है ? देखूं

अनिता . नही, नही आप न जायँ, पिताजी, वह यहीं आ रहे है।

[यदु का प्रवेश, जगवन्ती और रामदास भी हैं। यदुनाथ बीस वर्ष का सावला युवक है। उसके हाथ मे चोट लगी है पर वह खुश है। सबको प्रणाम करता है।]

यदुनाथ . प्रणाम ताऊ जी, प्रणाम ताई जी।

कलावती जुग, जुग जियो, बेटा।

प्रभुदास · जीते रहो बेटा। अशोक कैसा है ?

यदुनाथ · सब ठीक है ताऊ जी। आप लोगो का पत्र पाकर ही उन्होने मुझे भेजा है। आप लोग दुखी न हो। स्टेशन तक साथ आये थे। शीघ्र ही शान्ति होने पर वह भी आयेगे।

प्रभुदास : कैसे है वहाँ के आदमी ? अब भी लडते है ?

यदुनाथ : वह तो हमारे जैसे ही है ? पर कभी-कभी आदमी के भीतर का राक्षस जाग पड़ता है।

रामदास : परमात्मा की लीला है, बेटा जो वह चाहता है, वही होता है ।

यदुनाथ : (एकदम तेज होकर) आपके इस परमेश्वर ही ने तो सब अनर्थ किया है । जो परमेश्वर आदमी को आदमी का रक्त पीने की प्रेरणा दे, उसे हम नही मानते । इस परमेश्वर ने इतनी सुन्दर पृथ्वी पर इतने भयानक आदमी क्यो पैदा किये ?

रामदास : (सकुचाकर) लेकिन बेटा ! उसकी आज्ञा के बिना पत्ता भी नही हिलता । और वह सब भले के लिए करता है ।

यदुनाथ : (उसी तरह) यदि वह सब भले के लिए करता है तो आप लोग क्यो घबरा रहे है । क्यो नही परमेश्वर का विधान मानकर वीर पुरुषो की तरह उत्सव मनाते कि आपके पुत्रो ने मरती हुई मानवता की रक्षा की है ?

प्रभुदास : (हँसकर) पागल यदु क्या बकने लगा । आ इधर बैठ ।

जगवन्ती : (रुँधा कठ) पागल ! तू क्या जाने मा-बाप का दिल कैसा होता है ?

यदुनाथ : जानता हूँ, माँ । मेरे लिए तुम्हारे प्राण निकल रहे है । अशोक को भी तुम चाहती होगी । पर माँ, क्या तुम जानती हो कि हमारे साथ और कितने माँ के लाल है । उनके लिए क्या तुम्हारी आँखो से

पानी की एक बूंद भी टपकी ? और जाने दो माँ, यदि मैं आकर तुमसे कहता, माँ ! आदमी-आदमी के खून से होली खेल रहा है। मैं उसे रोक रहा हूँ तो क्या तुम जाने देती ?

[सब एकदम चुप रह जाते है। सन्नाटा छा जाता है।]

यदुनाथ बोलो पिता जी ! क्या तुमने हमे कायर नही बना डाला ? क्या तुम्हारी करुणा, तुम्हारा प्रेम, तुम्हारी विशालता सब स्वार्थ की क्षुद्र सीमा मे नही बधे है ?

कलावती : यदु ! तुम क्या कहने लगे ? तुम्हे किसने बताया कि हम नाराज है। हमारे आँसू भय के आँसू नही है। बेटा ! ये प्रेम और अभिमान के आँसू है। कहो तुमने क्या किया ?

यदुनाथ . हमने क्या किया, यह हम नही जानते। अशोक ने जो कहा, वही किया। वह आयेगे तो सुना देगे।

कलावती : अशोक सुनाएगा ? नही यदु, वह भी क्या बोलना जानता है ?

यदुनाथ : (नम्र होकर) तुम ठीक कहती हो ताई, अशोक भइया बोलना नही जानते। कर्मशील पुरुषो के मुख में वाणी होती ही नही। अच्छा, मैं अब जाऊँगा।

जगवन्ती : (चकित) क्या ?

रामदास . अभी जायगा ?

कलावती : ऐसी क्या बात है, बेटा ?

प्रभुदास : अभी नही। अभी तो बाते भी नही हुई।

यदुनाथ : ताऊ जी ! मैं अधिक देर नही ठहर सकता। उन लोगो को अकेला छोड़ आया हूँ।

जगवन्ती : लेकिन बेटा……

यदुनाथ . लेकिन-वेकिन कुछ नही, माँ ! मैं जरूर जाऊँगा। तुमने मुझे देख लिया। दूसरे बेटो की माताएँ भी तो तरस रही होगी। पिता जी……

रामदास : (चौककर) मैं कहता था कि गाड़ी शाम को……

यदुनाथ . (बीच ही मे) पिता जी ! मैं इसी गाड़ी से जाऊँगा।

रामदास . उद्विग्नता को रोककर) अच्छा, अच्छा। मैं अभी जाता हूँ। (एक क्षण रुक कर) मैं कहता था कि मैं भी तुम्हारे साथ चलूं तो……

जगवन्ती : हाँ-हाँ, तुम जरूर चले जाओ।

यदुनाथ : नही पिता जी। केवल मैं जाऊँगा और अभी जाऊँगा। आप अभी ताँगा मँगवा दीजिए।

रामदास : अच्छा बेटा। मे अभी मगवाता हूँ।

[रामदास जाता है]

जगवन्ती . अच्छा, चल खाना तो खा ले।

यदुनाथ : नही माँ। (एक क्षण रुककर) अच्छा, चलो।

[जगवन्ती जल्दी से चली जाती है।]

यदुनाथ : (उठकर) मे अब जाऊँ, ताऊ जी।

प्रभुदास : (अनसुनी करके) यदु बेटा ! क्या सचमुच अशोक का नाम लोग श्रद्धा से लेते हैं ?

यदुनाथ : हाँ ताऊ जी ! अशोक भइया ने वह काम किया है जो बड़े से बड़े नेता नहीं कर सकते ।

प्रभुदास : सचमुच तुम ऐसा समझते हो, यदु !

यदुनाथ : मैं कहता हूँ अशोक भइया अमर हो गये ।

प्रभुदास : (गद्गद होकर) तुम जुग-जुग जियो, बेटा । (एक क्षण रुककर) कुछ भी हो, एक दिन दुनिया कहेगी की प्रभु पैसे वाला नहीं था लेकिन सन्तान के प्रति उसने अपना कर्त्तव्य पूरा किया ।

[तभी रामदास की आवाज़ सुनाई देती है ।]

रामदास : यदु, तांगा आ गया है । (यदु उठता है । अनिता और कलावती भी उठती हैं)

यदुनाथ : नमस्कार, ताऊ जी !

प्रभुदास : परमात्मा तुम्हारी रक्षा करे, बेटा ।

कलावती : भगवान् करे तुम जल्दी लौटो ।

[कलावती उनका माथा चूम लेती है । आँखों में पानी भर आता है । यदु चुपचाप बाहर निकल आता है । केवल अनिता साथ आती है । कमरे के आगे दीवार लग जाती है ।]

अनिता : यदु भइया !

यदुनाथ : ओह अनिता ! क्या कहती है ?

अनिता : यदु भइया ! तुम उन सबसे कहना कि तुम्हारी बहिन अनिता को तुम जैसे भाइयों पर बड़ा गर्व

है। वहाँ से लौटो तो एक बार यहाँ अवश्य आना। मै बाट देखूँगी। अच्छा।

यदुनाथ (अवरुद्ध कंठ) अच्छा, कहूँगा। लेकिन कौन पिता जी! क्या बात है? आप बोलते क्यों नही?

रामदास: (रुँधा कंठ) बेटा, अभी तार आया है कि अशोक बुरी तरह घायल हो गया। उसे यही ला रहे हैं।

यदुनाथ : क्या ··

अनिता : क्या भइया घायल हो गये? (कलावती तेजी से आती है)

कलावती : क्या हुआ, अशोक को क्या हुआ?

[सब तेजी से घबराये हुए प्रभुदास के कमरे की ओर जाते हैं। परदा गिर जाता है।]

दूसरा दृश्य

[वही कमरा। अब उसमे केवल एक चारपाई है। उस पर अशोक लेटा है। उसे खूब तेज बुखार चढा है। उसके सिर, हाथ और पैरो पर पट्टियाँ बँधी हैं। पट्टियो पर जगह-जगह लहू चमक आया है। उसकी आँखें बन्द हैं। प्रभुदास कुण्ठित, मलिन उसके सिरहाने की तरफ फर्श पर बैठे हैं। कलावती पागल सी बेटे को देख रही है। एक कोने मे अनिता है जो क्षण मे गभीर और क्षण मे द्रवित हो उठती है। फर्श पर प्रभुदास के पास रामदास, जगवन्ती, यदु और दो नवयुवक बैठे है। वे सब दुख और सुख के फंसे मे फँसे अशोक की ओर देख रहे हैं। डाक्टर भी है। वह अशोक की परीक्षा कर रहा है।]

डाक्टर : (गम्भीर होकर) मै इन्हे होश मे तो ला सकता हूँ परन्तु···· ।

प्रभुदास : परन्तु क्या डाक्टर साहब ?

डाक्टर : मै कहता था कि यह रात बीत जाती तो ठीक था।

प्रभुदास : डाक्टर साहब, मै गरीब हूँ पर अशोक के लिए जो कहोगे, वही करूँगा। जो माँगोगे, वही दूंगा। दुनिया यह नही कह सकेगी कि प्रभुदास बेटे के लिए कुछ करने मे झिझका था।

डाक्टर : नही, मै यह नही सोचता। अशोक के लिए मै कुछ कर सका तो अपने को धन्य समझूंगा।

यदुनाथ : डाक्टर, मुझे अचरज है कि भइया के प्राण कहाँ अटके।

एक युवक : ये तुम्हे स्टेशन छोड़कर लौट रहे थे कि इन्होने कुछ लडकियो को घिरे हुए देखा। बस, यह उधर ही दौड़े, इन्होने उन लड़कियो को तो बचा लिया पर स्वयं न बच सके।

दूसरा युवक : वहाँ जो व्यक्ति था, उसने बहुत रोका पर वह न रुके। हमारी राह तक न देखी। जब तक हम पहुँचे, यह घायल हो चुके थे।

पहला युवक : डाक्टर! जिसने प्राणो का मोह नही किया, उसका यह अन्त।

[सहसा अशोक आँखें खोल देता है।]

अशोक : (क्षीण स्वर मे) यह अन्त बहुत शानदार है। बहुत शानदार। मै इसके योग्य नही हूँ पर ··

प्रभुदास : बेटा आ ···

कलावती : (गद्गद होकर) बेटा ! मेरा बेटा ·

अशोक : कौन मा, तुम रोती हो ? न मा, तुम रोओ नही । मैं अच्छा हो जाऊँगा और न भी हुआ तो भी तुम रोना मत । एक के बदले अनेक अशोक तुम्हे मिलेगे, मा ।

कलावती : मै नही रोती, बेटा । मै रोऊँगी क्यो ? तू अच्छा हो जा ।

अशोक : अनिता कहाँ है ?

अनिता : (चौंककर) भइया !

अशोक : अनिता, अनिता तू···तू आरती ; नही करेगी ? कर पगली ··

[अशोक फिर आँखें वन्द कर लेता है । देश के प्रसिद्ध नेता डाक्टर प्रभात प्रवेश करते हैं ।]

प्रभात : कहाँ है, अशोक ?

प्रभुदास (उठकर) इधर से, इधर । आप, आप यहाँ आइए । (प्रफुल्लित होकर) अब डर नही है । आप आये है । परमेश्वर ने आपको भेजा है । आप जरूर अशोक को वचा लेगे ।

प्रभात · आप अशोक के पिता है ?

प्रभुदास . (गर्व से) जी हाँ । मै अशोक का पिता हूँ । यह माँ है, वह बहिन अनिता है । ये मित्र है । मै अशोक के लिए कुछ भी उठा न रखूंगा । मै दुनिया को यह कहने का अवसर न दूंगा कि प्रभुदास ने

अपने बेटे के लिये कुछ नही किया। आप देखिये न ...

[डा० प्रभात गभीर होकर अशोक की जाँच करते हैं । उनका चेहरा चिन्तित हो जाता है।]

प्रभुदास कैसा है अशोक ?

प्रभात अच्छा है, यह रात शान्ति से बीत जाय ।

अशोक पिता जी !

[अशोक आँखे खोलता है]

प्रभुदास बेटा, बेटा, देखो डा० प्रभात आए है ।

अशोक · (अनसुना करके) यदु कहाँ है ?

यदुनाथ (आगे बढकर) मै यह रहा, भइया ।

अशोक यदु, अपनी प्रतिज्ञा याद है न ? मेरे मा-बाप को यह न मालूम होने देना कि अशोक अब दुनिया मे नहीं है ।

यदुनाथ (रुँधा कठ) तुम ऐसा क्यो कहते हो अशोक ।

अशोक . पिता जी, मा, प्रणाम । अनिता अच्छी तरह ..

[सहसा चुप हो जाता है। सब चिन्तातुर होकर एक दूसरे को देखते हैं। डा० प्रभात की दृष्टि उसके मुख पर जमी है। दो क्षण के बाद वह बडी गम्भीरता से बोल उठते हैं।]

प्रभात · पक्षी उड़ना चाहता है ।

कलावती · (घबराकर) आ-आ ?

प्रभुदास : क्या कहा ? अशोक ! अशोक !!

रामदास . आप देखिए तो डाक्टर साहब ।

प्रभात : (सिर हिलाकर) देख तो रहा हूँ । खेल समाप्त हो चुका

है। एक दिव्यात्मा पृथ्वी पर उतरी थी, वह अब लौट रही है। अशोक जा रहा है।

[यह कहकर डा० प्रभात रुकते नही, बाहर चले जाते हैं। कमरे मे उपस्थित सब व्यक्ति पिघल उठते है। कलावती हा-हा करके अशोक से चिपट जाती है। जगवन्ती उसे सभालती है। प्रभुदास जैसे कही खो जाते हैं। अनिता सुबक उठती है।]

कलावती · अशोक, अशोक, मेरे बेटे, नही नही

प्रभुदास · (सहसा जागकर) क्या करती हो अशोक की मां, रोती हो अशोक न कहा था—रोना मत और तुम अशोक की बात टालती हो। नही, नही, यह रोना बन्द करो। अशोक की मा, यह रोना बन्द करो।

[कलावती नही सुनती। उसकी छाती फट गयी है। उसकी वाणी कम्रे और दीवारो को कपा देती है।

कलावती : (बिलखती हुई) मै मां हूँ, मा, मेरा रक्त, मेरा मांस, मेरा बच्चा · मेरे कलेजे का टुकडा

प्रभुदास : लेकिन मै बाप हूँ। अशोक वीर पुत्र था। मै वीर पुत्र का बाप बनूंगा। मुझे अशोक पर गर्व है। मै दुनिया को यह कहने का मौका नही दूंगा कि अशोक जैसी महान् और दिव्य आत्मा का पिता प्रभुदास रोया था। मै हँसूगा।

[सचमुच वे बडे जोर से हँस पड़ते हैं]

अनिता : (जोर से रोकर) पिता जी ! पिता जी ! !

प्रभुदास . (अनिता को छाती मे भरकर) अशोक की बहिन होकर

रोती है। तुझे अशोक चाहिए न ? देख अनिता यह भारत अनेक अशोको से भरा पड़ा है, फिर तू क्यो रोती है ? मैं भी तो नही रोता, हँसता । तू भी मेरे साथ हँस।

[प्रभुदास फिर हँस पडते है। सब युवक हतभ्रम उस दुवले-पतले अधेड पुरुष के साहस को देखते है। सहसा यदु आगे बढ कर कलावती को उठा लेता है।]

यदुनाथ मां, तुम हम सबकी मा हो। हमे आशीर्वाद दो, मा ! भारत के समस्त पुत्र अशोक के पद-चिन्हो पर चल सके।

एक युवक · सच मा ! हम मानव के रक्त को व्यर्थ न जाने देगे। हम सारे हिन्दुस्तान में अशोक ही अशोक पैदा कर देगे। मा, तुम नये हिन्दुस्तान की मा हो।

[सहसा कलावती उठकर उन्हे देखती है। उसकी आखें चमक उठती है। वह उन्हें देखती है फिर अशोक को देखती है और फिर उस पर गिर पड़ती है।]

[परदा गिर जाता है]

कलावती · मैं क्या करूँ ? मैं मां हूँ। मैं अपने कलेजे को कैसे पत्थर करूँ ? कैसे

(यदि खेला जाय तो यह नाटक यही समाप्त हो जाना चाहिए)

[डा० प्रभात का प्रवेश। नगर के अनेक गण्यमान्य पुरुष उनके साथ आते है। एक क्षण वे नत सिर झुकाये खड़े रहते हैं फिर डा० प्रभात कहते हैं।]

प्रभात . बाहर अपार जनता है प्रभुदास जी। अशोक को ले चलो। ऐसे महान् पुरुष के लिये आँसू नही बहाने चाहिए।

प्रभुदास . (उठकर) चलिए डाक्टर साहब ! हम सब तैयार हैं। हम आँसू नही बहाते लेकिन वह माँ है। उसे क्या कहूँ।

[कहते-कहते वे कुहनी उठाकर आँखे पोछ लेते है। फिर बाहर जाते हैं। रामदास उनके पीछे जाता है। उसकी आँखे गीली हैं। डा० प्रभात एक बार अशोक को देखते हैं फिर कलावती को। चुपचाप बाहर आ जाते है। परदा गिरने लगता है। गिरते-गिरते युवक भी बाहर जाते दिखाई देते हैं। केवल मा की सिसकियाँ सुनाई देती हैं। परदा फिर उठता है और इस बार अशोक तिरगे मे लिपटा हुआ दिखाई देता है। दोनो युवक, यदु, रामनाथ, प्रभुदास सब तैयारी मे व्यस्त है। अनेक व्यक्ति सिर झुकाये खडे हैं। स्त्रियाँ अभी तक रोये जा रही हैं। कलावती प्रयत्न करती है पर उसकी छाती फट गई है। यही परदा पूरी तरह गिर जाता है।]

प्रश्न

१. अशोक ने अपने जीवन का उत्सर्ग किस लिए किया ?
२. अशोक की बहिन अनिता के चरित्र का विश्लेषण करो।
३. क्या यदु और अशोक भारत के सच्चे सुपुत्र कहे जा सकते है ? यदि हाँ तो क्यो ?
४. लेखक की भाषा और लिखने की शैली मे जहाँ-जहाँ करुणा फूटी पडती है—उन स्थलो का उल्लेख करे।

मुद्रक—एज्यूकेशनल प्रेस, आगरा